दयानन्द

लेखक

सन्तराम, बी० ए०

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

पहली बार] १९३० [मूल्य ।||) आने

स्वर्गीय वेदव्रत

समर्पण

प्यारे पुत्र वेदव्रत

की

मधुर स्मृति में

जो मेरे जीवन का

एक-मात्र सहारा

था।

—सन्तराम

प्रस्तावना

झंडे दुनिया में उनके गड़े हैं।
सीस जिनके धर्म्म पर चढ़े हैं॥

संसार में बड़े बड़े राजे-महाराजे, बड़े बड़े सेठ-साहूकार, और बड़े बड़े बली-योधा हो गये पर आज उनका कोई नाम तक नहीं जानता। किन्तु जिन लोगों ने अपने जीवनों को परोपकार में लगाया, जिन्होंने आप कष्ट उठाकर दूसरों को सुख दिया, जिन्होंने देश और धर्म्म के लिए अपने प्राणों को न्योछावर कर दिया, उनका नाम अमर है। संसार अब तक उनका गुण-गान करता है। वास्तव में ऐसे ही नर-नारियों का जीवन धन्य है।

परोपकारी महात्माओं के जीवन-चरित पढ़ने से हमें बड़ा लाभ होता है। हमें पता लगता है कि जीवन को कैसे उच्च और पवित्र बनाया जा सकता है। किस प्रकार के काम करने से हम संसार के दुःखों को दूर करके उसको सुख-धाम बना सकते हैं। महात्मा जन अँधेरे में दीपक के समान होते हैं। जिस प्रकार दीपक की सहायता से मनुष्य ठोकर नहीं खाता और गड्ढे में गिरने से बचता है, उसी प्रकार इन महापुरुषों के चरण-चिह्नों पर चलने से मनुष्य संसार में दुःख नहीं

पाता—वह पाप के कीचड़ में गिरने से बच जाता है। संसारी लोग जब जब धर्म्म को भूलकर अधर्म्म करने लगते हैं, जब जब संसार में पुण्य का नाश और पाप की वृद्धि होती है, तब तब जगदीश्वर की कृपा से जगत् को सत्य धर्म्म का मार्ग दिखाने के लिए ऐसे महापुरुषों का जन्म होता है। इनके आने से संसार में अविद्या का अंधकार दूर होकर पुण्य का प्रकाश फैलता है और दुखी दुनिया सुख पाने लगती है। लोग इनको अवतार, पैग़म्बर और ऋषि आदि आदर-सूचक नामों से पुकारने लगते हैं। ऐसे ही एक चमत्कारी महापुरुष के अलौकिक जीवन की कुछ घटनाओं का वर्णन इस पुस्तक में किया गया है।

इस पुस्तक की तैयारी में मुझे स्वामी श्रीसत्यानन्दकृत दयानन्द-प्रकाश से बड़ी सहायता मिली है। इसलिए मैं श्रीस्वामीजी महाराज का आभारी हूँ।

पुरानी बसी—होशियारपुर] **सन्तराम**

विषय-सूची

दयानन्द

पहला परिच्छेद

स्वामी दयानन्द से पहले भारत की अवस्था

आज से सौ वर्ष पहले इस देश की धार्मिक और सामाजिक अवस्था बहुत बुरी थी। आर्यों का पवित्र वैदिक धर्म्म, जिसका किसी समय सारे संसार में डंका बजता था, भारत में भी छिप-सा गया था। इसका स्थान बहुत से छोटे-छोटे मतों और सम्प्रदायों ने ले लिया था। एक परमेश्वर की पूजा के स्थान में कोई शक्ति को मानता था तो कोई शिव को; एक ब्रह्मा का पुजारी था तो दूसरा विष्णु का। एक ओर 'जय सीताराम' की ध्वनि सुनाई देती थी तो दूसरी ओर 'जय राधेश्याम' की। सारांश यह कि आर्य जाति सैकड़ों-सहस्रों मत-मतान्तरों में बँटी हुई थी। ये मत सदा एक दूसरे के साथ लड़ते-झगड़ते रहते थे।

धर्म्म का असली तत्त्व बिलकुल लुप्त हो चुका था। सारा बल बाहरी चिह्नों ही पर था। माथे पर टीका लगाना, कान फड़वा कर मुद्रा डालना, अनन्त पहनना, लंबी चोटी रखना, किसी के हाथ का न खाना, छोटी जाति के मनुष्य के साथ छू जाने पर स्नान करना इत्यादि बातों को ही धर्म समझा जाता था। देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए बेचारे निरपराध जन्तुओं का रक्त बहाया जाता था। किसी किसी जगह तो मनुष्यों की भी बलि चढ़ाई जाती थी।

स्त्रियों और शूद्रों को विद्या पढ़ने की आज्ञा न थी। स्त्रियाँ पैर की जूती समझी जाती थीं। वेद का मंत्र सुन लेने पर शूद्र के कान में पिघला हुआ सीसा भर दिया जाता था। लड़के और लड़कियों के विवाह बहुत छोटी आयु में कर दिये जाते थे। इससे बहुत बड़ी संख्या में लड़कियाँ विधवा हो जाती थीं। उनमें से कई एक की अवस्था तो एक वर्ष से भी कम होती थी। फिर इन बेचारी विधवाओं पर एक और घोर अत्याचार किया जाता था। स्वयं उनके निकट संबंधी ही उनके लिए चिता बना कर उन्हें 'सती' हो जाने अर्थात् पति की लोथ के साथ जीते जी जल मरने पर मजबूर करते थे।

ऊँची जाति के हिन्दू जन्म के झूठे अभिमान में छोटी जाति के हिन्दुओं पर नाना प्रकार के अत्याचार करते थे। वे

उनके साथ कुत्ते-बिल्ली आदि जन्तुओं से भी बुरा बर्ताव करते थे। उन ग़रीबों को मन्दिरों और देवालयों में पूजा के लिए जाने की आज्ञा न थी। उनकी छाया पड़ जाने पर ब्राह्मण लोग नहाते थे। उनको आम सड़कों पर चलने की मनाही थी। इन लोगों को विद्या पढ़ने से तो वंचित रक्खा ही जाता था, साथ ही इनको साफ़-सुथरा रहने तथा धनवान् बनने की भी आज्ञा न थी। इनकी स्त्रियों का अपमान करना बुरा न समझा जाता था।

अपने को ऊँचा—वर्णधारी—समझने वाली जातियों में भी आगे छोटी छोटी उपजातियाँ या बिरादरियाँ थीं। ये एक-दूसरे को नीच समझती और घृणा करती थीं। इनका खान-पान और ब्याह-शादी आपस में न हो सकती थी। बिरादरियों की चहारदीवारी उनके लिए जेलख़ाने की कोठरियाँ थीं। इनको तोड़ कर आपस में मिलना असम्भव था। सारांश यह कि आर्य-जाति के लाखों टुकड़े हो चुके थे, और कोई भी बात ऐसी बाक़ी न थी जो इनको एकता के सुदृढ़ सूत्र में बाँध सके।

संस्कृत-विद्या का प्रचार सर्वथा बंद हो चुका था। इस-लिए सच्चे और झूठे धर्म-ग्रन्थों की पहचान न रही थी। संस्कृत में लिखी हुई प्रत्येक पुस्तक, चाहे उसमें ऊट पटाँग बातें ही क्यों न लिखी हों, धर्म-पुस्तक समझी जाती थी। वेदों का

पढ़ना तो दूर उनके नाम तक हिन्दुओं को याद न रहे थे। पुराणों की मन-गढ़ंत कहानियाँ ही धर्म्म की बातें समझी जाती थीं। आर्यो* का कोई एक ऐसा धर्म्म-ग्रन्थ ही न था जिसके नाम पर सारी जाति इकट्ठी हो सके।

ऐसी दशा में ईसाइयों और मुसलमानों की ख़ूब बन आई थी। ये लोग पुराणों की असम्भव बातें और देवी-देवताओं की कहानियाँ पेश करके हिन्दुओं को शास्त्रार्थ के लिए ललकारते थे। हिन्दुओं के बड़े बड़े पण्डित भी उनकी बातों का उत्तर देने का साहस न कर सकते थे। हिन्दू-धर्म्म एक कच्चा धागा समझा जाता था। सहस्रों स्त्री-पुरुष पवित्र वैदिक धर्म्म को छोड़ कर मुसलमान और ईसाई होते जा रहे थे।

मुसलमानों के शासन-काल में जो हिन्दू मुसलमान हुए थे वे अधिकतर लालच और भय से ही पतित हुए थे। अपने भाइयों के सामाजिक अत्याचारों ने ही उन्हें अपने बाप-दादा के धर्म्म को छोड़ने पर विवश किया था। इस्लाम के सिद्धान्त

---

* हिन्दुओं का असली नाम आर्य है। महाभारत और रामायण में कहीं "हिन्दू' नाम नहीं मिलता। सन् १८७० ई० में काशी के ४६ पंडितों ने यह व्यवस्था दी थी—

काफ़र को हिन्दू कहें यवन स्वभाषा माँहि।
ताते हिन्दू-नाम यह उचित कहिइबो नाँहि॥

उनको अपनी ओर न खींच सके थे। परन्तु ईसाई-मत के पास विद्या का एक प्रबल शस्त्र था। ईसाई पादरी स्थान स्थान पर स्कूल और कालेज खोल कर पढ़े-लिखे हिन्दू नवयुवकों के मन में उनके प्राचीन धर्म्म के प्रति घृणा और अश्रद्धा उत्पन्न कर रहे थे। मुसलमानों ने हिन्दुओं के केवल शरीर पर ही प्रभाव डाला था। परन्तु ईसाइयों ने उनके मस्तिष्क को भी अधीन कर लिया था। वे जब तैंतीस करोड़ देवी-देवता, मूर्ति-पूजा, जन्म की जाति-पाँति, ऊँच-नीच और कृष्ण-लीला आदि बातों को लेकर आक्षेप करते थे तो किसो भी हिन्दू नवयुवक से उत्तर न बन पड़ता था। वह लज्जा से सिर नीचा कर लेता था। पादरियों के प्रचार से, विशेषत: मद्रास और बंगाल में, इतने लोग ईसाई हो गये थे कि उन्होंने पहले ही कह दिया कि शीघ्र ही यह आर्यावर्त ईसाई होकर ईसावर्त बन जायगा। कलकत्ता के एक कालेज में पढ़नेवाले हिन्दू नव-युवकों की एक कक्षा की कक्षा ही ने एक दिन में बपतिस्मा ले लिया था। पूना की पण्डिता रमाबाई के ईसाई हो जाने से सैकड़ों हिन्दू-विधवाओं ने ईसाई-धर्म्म की शरण ली थी। पण्डित नीलकण्ठ शास्त्री ने ईसाई बनकर बाइबल का संस्कृत में अनुवाद कर दिया था। इस प्रकार मुसलमानों और ईसाइयों के आक्रमणों से आर्य-सभ्यता और आर्य-धर्म्म थर्रा रहा था। जो हिन्दू एक बार

ईसाई या मुसलमान हो जाता था उसके लिए दुबारा अपने धर्म में आना असम्भव था। हिन्दू घटाना ही जानते थे, जोड़ना उन्होंने सीखा ही न था। इसलिए दिन पर दिन उनकी संख्या कम होती जा रही थी। सारांश यह कि हिन्दुओं का संगठन बिलकुल टूट चुका था। देश का सर्वनाश मूर्तिमान् होकर चारों ओर डरा रहा था। निराशा और अन्धकार के सिवा और कुछ भी देख न पड़ता था।

इस अविद्या और अंधकार के समय में इस देश में एक महापुरुष आया। उसका आगमन अमावस्या की अंधकारमयी रजनी में चंचला की चमक के समान या तूफ़ान से ठाठें मारते हुए सागर में प्रकाश-स्तम्भ के समान था। दुखी दुनिया ने देखा कि हमें इस दुःख-सागर से पार ले जाने के लिए ईश्वर ने एक देवता को भेजा है। लोग झुंड के झुंड उसकी ओर दौड़े। उसने इन अंधकार में ठोकरें खानेवालों को मार्ग दिखाया; इन डूबतों को किनारे पर पहुँचाया। कुछ स्वार्थी लोगों की इस अंधेरगर्दी में ख़ूब बन आई थी। वे संसार को इसी अंधकार में रखना चाहते थे। वे इस दिव्य ज्योति के शत्रु बन गये। वे उसे बुझाने के लिए दौड़े। उन्होंने इस महापुरुष को नाना प्रकार के कष्ट दिये। इन पर ईंट-पत्थर बरसाये। जूते फेंके। विष दिया। परन्तु वह महात्मा था कि बिलकुल न घब-

राया। वह संसार को सच्चा रास्ता दिखाने और उसके दुखों को दूर करने में उसी प्रकार लगा रहा। उसके निरन्तर परिश्रम और अथक उद्योग से संसार में वैदिक धर्म्म का सूर्य एक बार फिर चमकने लगा; और सत्य मार्ग से भटकी हुई दुनिया को ईश्वर से मिलने और मुक्ति-लाभ करने का उपाय फिर से मालूम हो गया।

इस महापुरुष का नाम दयानन्द था। वह वेदों का बहुत बड़ा विद्वान् था। वह बाल-ब्रह्मचारी था। इसलिए उसके शरीर में चार घोड़ों की गाड़ी को रोक लेने का बल था। वह सचाई का पुतला था। वह ईश्वर का सच्चा भक्त था। वह प्राणि-मात्र का हितैषी और सच्चा पथदर्शक था। वह योगी था। उसमें दुःखों और विपत्तियों को सहारने की असीम शक्ति थी। वह संकल्प का धनी था। वह दया और आनन्द का भाण्डार था। बुराई करनेवाले के साथ भी वह भलाई करता था। वह किसी को अपना शत्रु न समझता था। वह आत्मा को अमर जानकर सत्य कहने में किसी से न डरता था। अगले परिच्छेदों में उसी दयालु दयानन्द के पवित्र चरित्र का वर्णन किया जायगा।

दूसरा परिच्छेद

दयानन्द का प्रकाश

काठियावाड़ में मोरवी एक छोटा सा राज्य है। उसमें टङ्कारा नाम का एक गाँव है। वहाँ कर्षनजी नाम के एक बड़े ज़मींदार रहते थे। वे उदीच्य ब्राह्मण थे। उन्हीं के घर को संवत् १८८१ विक्रमी में भगवान् दयानन्द ने अपने जन्म से पवित्र किया। माता-पिता ने उनका नाम मूलजी रक्खा। कुछ लोग उन्हें दयालजी भी कहते थे। उस समय कौन जानता था कि यह बालक बड़ा होकर संसार का महान् पुरुष बनेगा।

मूलजी जब पाँच वर्ष के हुए तो उन्हें विद्या-आरम्भ कराया गया। उनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। वे अपना पाठ झट याद कर लेते थे। चौदह वर्ष की आयु में ही सारा यजुर्वेद और दूसरे वेदों के कुछ अंश उन्हें कण्ठस्थ थे। इसके अतिरिक्त व्याकरण भी उन्होंने पढ़ लिया था।

मूलजी के पिता शिवजी के भक्त थे। वे शिवरात्रि को व्रत और उपवास किया करते थे। शिव की मूर्त्ति के सामने बैठ कर वे रात भर जागते थे। जब मूलजी चौदह वर्ष के हुए तो कर्षनजी ने उन्हें भी व्रत रखने पर विवश किया।

माता ने बहुतेरा कहा कि लड़का छोटा है, यह भूखा न रह सकेगा; परन्तु पिता ने एक न मानी। रात को शिवजी के सारे भक्त मन्दिर में इकट्ठे हुए। कुछ देर तक तो वे शिव की मूर्त्ति के सामने बैठे रहे। परन्तु आधी रात होने पर निद्रा ने उन्हें आ दबाया। एक एक करके सब सो गये। कर्षनजी भी ऊँघते ऊँघते खुर्राटे लेने लगे।

कर्षनजी ने मूलजी को कह रक्खा था कि शिवजी कैलास पर निवास करते हैं। वे सारे संसार के स्वामी हैं; शत्रुओं से अपने भक्तों की रक्षा करते हैं।

सारी भक्त-मंडली तो सो गई परन्तु बालक मूलजी जागते रहे। वे देखना चाहते थे कि कैलाश-पति शिव कब आकर मूर्त्ति पर चढ़ाई हुई मिठाई को खाते हैं। महादेव के दर्शन की लालसा से वे आँखों पर पानी के छींटे मार मार कर नींद को दूर भगा रहे थे।

सबके सो जाने से मन्दिर में बिलकुल सन्नाटा छा रहा था। सोनेवालों के खुर्राटों के सिवा और कुछ शब्द सुनाई न पड़ता था। इतने में बालक मूलजी ने क्या देखा कि एक चुहिया बिल से निकल कर उस पत्थर की मूर्त्ति पर चढ़ गई और बे-खटके उस चढ़ावे की मिठाई को खाने लगी। यह देख उन्हें बड़ी हैरानी हुई। पिता ने उनके हृदय में जो शिवजी

के प्रति भक्ति-भाव उत्पन्न किया था उस पर गहरी चोट लगी। वे सोचने लगे, क्या यह वही शिव है जिसकी स्तुति में इतने भजन गाये जाते हैं? क्या यही संसार का स्वामी है? यह तो अपने ऊपर कूदनेवाली चुहिया को भी नहीं हटा सकता। यह संसार का क्या बना या बिगाड़ सकता होगा? उन्हें विश्वास हो गया कि यह निर्जीव पत्थर की मूर्त्ति सच्चा शिव नहीं।

अपनी शङ्का को दूर करने के लिए उन्होंने पिता को जगाया और जो कुछ देखा था, सब कह सुनाया। पिता ने ऐसी शङ्का करने पर पहले तो पुत्र को डाँटा और धमकाया कि ऐसी बात मुँह से मत निकालो; त्रिलोक-पति महादेव अप्रसन्न हो जायँगे; फिर युक्ति से उसे समझाने का यत्न किया। परन्तु वे उसकी शङ्का को न मिटा सके। तब से बालक दयानन्द का विश्वास मिट्टी के महादेव पर से बिलकुल उठ गया। उन्होंने उसी समय घर आकर व्रत तोड़ डाला और कुछ खा-पीकर सो गये।

कुछ दिन बाद उनकी प्यारी बहन का देहान्त होगया। भाई-बहन का आपस में बड़ा प्रेम था। मूलजी ने पहले कभी मृत्यु न देखी थी। इस मृत्यु से उनके हृदय पर गहरी चोट लगी। वे सन्न से रह गये। उनके नेत्रों से एक आँसू तक न

गिरा। लोगों को आश्चर्य था कि बहन-भाई का इतना प्रेम होने पर भी मूलजी नहीं रोये। परन्तु मूलजी तो अपने विचार में लीन थे। वे सोच रहे थे कि मृत्यु क्या वस्तु है। इससे मनुष्य कैसे बच सकता है।

इस घटना के तीन वर्ष बाद उनके चचा का देहान्त होगया। चचा मूलजी पर बड़ा प्यार रखते थे। उनकी मृत्यु को देखकर मूलजी के हृदय पर संसार की असारता का गहरा असर पड़ा।

अब वे सच्चे शिव को जानने और मृत्यु को जीतने की विधि ढूँढ़ने लगे। उन्हें किसी ने बताया कि ब्रह्मचर्य और योगाभ्यास द्वारा ही मृत्यु को जीता जा सकता है। बस, उन्होंने जीवन-पर्यन्त विवाह न करने और योग सीखने का दृढ़ संकल्प कर लिया।

उनके इस संकल्प का पता किसी प्रकार उनके पिता को भी लग गया। उन्होंने चटपट पुत्र का विवाह कर देने की ठानी जिससे पुत्र कहीं साधु न हो जाय। विवाह की सब तैयारियाँ हो गईं। परन्तु दयानन्द अपने इरादे के पक्के थे। जब उन्होंने देखा कि घर रह कर विवाह से बचना कठिन है तो उन्नीस वर्ष की आयु में एक दिन, रात के समय, घर से निकल पड़े। वे सड़क छोड़कर पगडंडियों से चलने लगे और दिन-रात चलते चलते सिद्धपुर नामक स्थान पर जा पहुँचे।

जिन लोगों को महापुरुष बनना होता है उनमें बड़ाई के लक्षण बचपन में ही दीखने लगते हैं। कहावत है, 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात।' सहस्रों हिन्दू रोज़ पत्थर की मूर्त्तियों की पूजा करते हैं। उन पर फल और मिठाई चढ़ाते हैं। परन्तु क्या कभी किसी के मन में वह शङ्का उत्पन्न होती है जो बालक दयानन्द के मन में उत्पन्न हुई ? हम प्रतिदिन लोगों को मरते देखते हैं। पर क्या कभी हमारे मन में मृत्यु को जीतने का विचार उत्पन्न हुआ ? घर को छोड़ना सुगम नहीं, फिर धन-धान्य से भरे घर को। तनिक सी तकलीफ़ होने पर मनुष्य घर को दौड़ता है। भोग-विलास की सामग्री के लालच से मनुष्य बड़े बड़े पवित्र विचारों को छोड़ देता है। परन्तु दयानन्द ने सच्चे महादेव, जगत्-पिता परमेश्वर को पाने के लिए घर-बार के सर्व सुखों का त्याग कर दिया। वे स्नेहमयी माता और प्रेमपूर्ण पिता को सदा के लिए छोड़ कर चल दिये।

सिद्धपुर में एक बड़ा मेला था। साधु-महात्मा बहुत बड़ी संख्या में इकट्ठे हुए थे। मूलजी का विचार उनसे मिलकर मृत्यु को जीतने की विधि सीखने का था। परन्तु मार्ग में उन्हें एक साधु मिला। वह उनके माता-पिता को जानता था। उसने टङ्कारा पहुँचकर सारी बात उनके पिता से कह दी। वे

तो पुत्र की खोज में हैरान हो ही रहे थे। झट कुछ सिपाही लेकर सिद्धपुर पहुँच गये और मूलजी को पकड़ लिया।

इस समय मूलजी विधि-पूर्वक ब्रह्मचारी बन चुके थे। उनके हाथ में दण्ड और कमण्डलु था। वस्त्र भी ब्रह्मचारियों के से थे। उनका नाम शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी रक्खा जा चुका था। धनवान् पिता को अपने प्रिय पुत्र की यह भिखारियों की-सी दशा देखकर बड़ा दुःख हुआ। उसने उनका कमण्डलु तोड़ डाला और कपड़े फाड़ डाले। जब रात हुई तब उन पर सिपाहियों का पहरा लगा दिया जिससे वे कहीं भाग न जायँ। ब्रह्मचारी शुद्धचैतन्य ने उनको इस काम से ज़रा भी न रोका। सिपाही समझे, यह अब नहीं भागेगा। परन्तु उनको ग़ाफ़िल पाकर शुद्धचैतन्य वहाँ से चल दिये और फिर उनके हाथ न आये।

पिता और पुत्र का यह अन्तिम मिलाप था। दयानन्द ने आज जनक-जननी और भाई-बंधु के प्रेम को, पिता की सारी सम्पत्ति को, और संसार के सारे भोग-विलास को अमर जीवन प्राप्त करने के उद्देश्य से त्याग दिया। धन्य हो दयानन्द! धन्य है आपका यह अपूर्व त्याग!

यहाँ से शुद्धचैतन्यजी अमर जीवन की बूटी की खोज में जङ्गलों और पहाड़ों में घूमने लगे। जहाँ कहीं उन्हें कोई

महात्मा और साधु मिलता, उससे योग की बातें पूछते। ब्रह्मचारी होने के कारण उन्हें अपना भोजन आप बनाना पड़ता था। इसमें बहुत-सा समय नष्ट हो जाता था। योगाभ्यास और पढ़ने के लिए उनके पास बहुत थोड़ा समय बचता था। इस-लिए उन्होंने पूर्णानन्द नाम के एक महात्मा से संन्यास ले लिया। अब उनका नाम दयानन्द सरस्वती हो गया।

स्वामी दयानन्द को नर्मदा-तट पर, चाणोद कर्नाली नामक स्थान में, ज्वालानन्द पुरी और शिवानन्द गिरि नाम के दो साधु मिले। उन्होंने उनको योग की सारी क्रियायें सिखाकर निहाल कर दिया।

× × ×

दयानन्द सदा सत्य की खोज में रहते थे। वे प्रत्येक बात की स्वयं परीक्षा करते थे। एक बार उन्होंने एक ग्रन्थ में मनुष्य की हड्डियों और नस-नाड़ियों का कुछ वर्णन पढ़ा। उस वर्णन में उन्हें कुछ गड़बड़ मालूम हुई। एक दिन गङ्गा में एक लाश बही जा रही थी। स्वामीजी ने झट नदी में छलाँग मारी और उसे पकड़ कर वे बाहर निकाल लाये। फिर उन्होंने उसे चीर कर उसकी नस-नाड़ियाँ देखीं। परन्तु जो कुछ उस पुस्तक में लिखा था उसके बिलकुल उलटा पाया। स्वामीजी ने पुस्तक को झूठी समझ कर उसी समय फाड़ डाला और लाश के साथ ही उसे भी नदी में बहा दिया।

तीसरा परिच्छेद

गुरु विरजानन्द

अब दयानन्द आबू, अर्वली, और गढ़वाल के दुर्गम पर्वतों और घने वनों में किसी ऐसे महात्मा की तलाश में फिरने लगे जो उन्हें सच्चे शिव के दर्शन करा सके। इस सहस्रों कोसों की पैदल यात्रा में उन्हें अगणित कष्ट उठाने पड़े। पैदल चलने से उनके पाँवों में छाले पड़ गये; पहाड़ के नुकीले पत्थरों से उँगलियों में घाव हो गये; जंगलों में घूमने से उनका नग्न शरीर काँटों से लहू-लुहान हो गया। गढ़वाल में अलखनन्दा नाम की एक नदी है। वह बर्फ़ से पटी हुई थी। स्वामीजी किसी महात्मा की खोज में उसमें से नंगे पाँव चल रहे थे। कुछ दिन से खाने को भी कुछ नहीं मिला था। अन्त को शीत के प्रकोप से वे बे-सुध होकर बर्फ़ पर गिर पड़े। पहाड़ी लोगों ने उनको उठाकर उनकी जान बचाई। सच है—

जिन ढूँढ़ा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ।

दयानन्द की धुनवाला पुरुष ही परमात्मा की प्राप्ति के लिए ऐसे कष्ट सहन कर सकता है।

पहाड़ों और जङ्गलों में भटकने और अपार कष्ट सहने पर भी उन्हें कोई पूरा गुरु न मिला। अन्त को उन्हें पता लगा कि मथुरा में विरजानन्द नाम के एक नेत्रहीन महात्मा रहते हैं। वे व्याकरण के पारदर्शी पण्डित और वेदों के पूर्ण ज्ञाता हैं। स्वामी दयानन्द इन्हीं महात्मा के पास मथुरा में पहुँचे।

विरजानन्द की कुटी पर जाकर उन्होंने द्वार को खट-खटाया। भीतर से आवाज़ आई—कौन है? दयानन्द ने उत्तर दिया—"एक संन्यासी"। "संन्यासी क्या चाहता है?" उत्तर मिला—"सत्य ज्ञान"। फिर पूछा—"कुछ पढ़ा है?" दयानन्द ने पुस्तकों की एक लंबी सूची सुना दी। विरजानन्द ने कहा—"पहले इन सब झूठे लोगों के बनाये हुए ग्रन्थों को नदी में फेंक आओ, इन झूठी पुस्तकों में जो कुछ पढ़ा है, उसे भूल जाओ, तभी सत्य ज्ञान प्राप्त कर सकोगे।"

उन दिनों छापेख़ाने न थे। हाथ की लिखी हुई पुस्तकें बड़ी महँगी और बहुत मुश्किल से मिलती थीं। दयानन्द ने बड़ी मेहनत और कोशिश से इनको पाया था। उनको फेंक देना एक साधारण बात न थी। परन्तु गुरु की बात पर जब तक पूर्ण श्रद्धा और अटल विश्वास न हो, तब तक शिष्य कुछ भी लाभ नहीं उठा सकता। दयानन्द ने गुरु-आज्ञा के सामने

सिर नवा दिया और अपने सब ग्रन्थों को ले जाकर यमुना में बहा दिया ।

महात्मा विरजानन्द बड़े प्रसन्न हुए । यद्यपि उनके चाम की आँखें नहीं थीं, तो भी उनके मन के नेत्रों ने देख लिया कि यह संन्यासी कोई साधारण विद्यार्थी नहीं । इसलिए वे उसे बड़ी लगन से पढ़ाने लगे ।

गरमी हो चाहे जाड़ा, महात्मा विरजानन्दजी यमुना-जल की कई गागरों के साथ अपनी कुटी पर ही स्नान किया करते थे । इसलिए दयानन्दजी को गुरुजी के लिए पानी के दस बारह घड़े रोज़ यमुना से लाने पड़ते थे । कुटी में झाड़ू लगाने का काम भी उन्हीं के सिपुर्द था। एक दिन वे झाड़ू लगा चुके थे परन्तु कूड़ा अभी बाहर नहीं फेंका था । विरजानन्दजी अपने विचार में मग्न इधर-उधर टहल रहे थे। संयोग से उनका पाँव उस कूड़े-कर्कट के ढेर पर जा पड़ा । क्रोध उनमें बहुत अधिक था। बहुत क्रुद्ध हुए और उन्होंने दयानन्दजी को डंडे से पीटना आरम्भ कर दिया । जब पीटते पीटते वे थक गये तो दयानन्दजी उठ कर उनका हाथ दबाने लगे और बोले—"भगवन्, मेरा शरीर बड़ा कठोर है; आपके हाथ कोमल हैं । मुझे पीटने से आपके चोट लगी होगी ।" अहो, कैसी अनुपम गुरु-भक्ति है ! इस छड़ी का निशान आयु भर उनके

शरीर पर बना रहा। वे प्रायः गुरुजी के उपकारों का वर्णन करते हुए लोगों को वह निशान दिखाया करते थे। स्वामीजी की आयु इस समय छत्तीस वर्ष के लगभग थी।

× × ×

महात्मा विरजानन्दजी स्वामी दयानन्द को जो पाठ एक बार पढ़ा देते थे उसे दुबारा नहीं पढ़ाते थे। सच तो यह है कि दयानन्दजी को उसे दुबारा पूछने की आवश्यकता ही न होती थी। वे गुरु-मुख से सुनते ही झट उसे स्मरण कर लेते थे। इसलिए गुरुजी उन पर बहुत प्रसन्न थे।

एक दिन की बात है, पाठ बहुत लम्बा और कठिन था। स्वामीजी को वह सारा याद न रहा। वे गुरुजी से दुबारा पूछने गये। गुरुजी ने बताने से इनकार कर दिया। वे बोले, आज तक पहले तुमने कभी दुबारा पाठ नहीं पूछा। मालूम होता है, कल तुमने ध्यान से नहीं सुना। जाओ, मैं नहीं बताऊँगा। स्वामीजी ने बहुतेरी मिन्नत-समाजत की, पर गुरुजी ने एक न मानी, वरन् वे कहने लगे—यदि सारा पाठ याद न हो तो यमुना में भले ही डूब मरो, परन्तु मेरे पास मत आना।

अन्त को हताश होकर स्वामीजी चले गये। वे यमुना-तट पर एक वृक्ष के नीचे बैठ कर उस भूले हुए पाठ को याद करने का यत्न करने लगे। परन्तु वह याद न आया। इसलिए

उन्होंने सचमुच ही नदी में डूब मरने का संकल्प कर लिया। वे इस विचार में इतने डूब-से गये कि उन्हें वहाँ बैठे बैठे निद्रा-सी आगई। इस निद्रा में उन्होंने क्या देखा कि एक व्यक्ति खड़ा वही पाठ सुना रहा है। बस, फिर क्या था। उन्हें सारा पाठ स्मरण हो आया। वे हर्ष से उछल पड़े और झट गुरुजी के पास जाकर उन्होंने सारा पाठ सुना दिया। गुरुजी सुनकर बहुत प्रसन्न हुए।

× × × ×

स्वामी दयानन्द महात्मा विरजानन्द के पास कोई ढाई वर्ष रहे। इस काल में यों तो आपने उनसे व्याकरण और वेदान्त ही पढ़ा परन्तु गुरुजी के प्रति आपकी इतनी अगाध श्रद्धा और भक्ति को देख कर ऐसा प्रतीत होता है कि इन पुस्तकों को पढ़ाने के अतिरिक्त गुरुजी ने आपको कोई और दुर्लभ पदार्थ भी दिया था।

वेदों का अर्थ करने की सच्ची रीति संसार से लुप्त हो चुकी थी। इसलिए भगवान् की पवित्र वाणी वेद का स्थान थोड़ी बुद्धि वाले मनुष्यों की बनाई हुई पुस्तकें ले रही थीं। तुलसीदास का रामायण और भागवत आदि पुराण भी ईश्वर की पुस्तकें समझी जाती थीं। वेदों का अर्थ ऐसा ऊट-पटाँग किया जाता था कि उसे देखकर वेदों से घृणा उत्पन्न होती थी।

महात्मा विरजानन्द ने स्वामी दयानन्द को चिरकाल से लोप हुई वेदार्थ की सची रीति बताई। उसको जान लेने से वे ईश्वर की वेद-वाणी का सच्चा अर्थ समझ लेने में समर्थ हुए। इससे उन्हें सच्चे शिव अर्थात् परमपिता परमात्मा के दर्शन होगये। बस यही वह दुर्लभ द्रव्य था जिसके कारण दयानन्दजी गुरु का इतना उपकार मानते थे।

× × ×

विद्या की समाप्ति पर शिष्य का गुरु से बिदा होने का समय आया। आज-कल विद्यार्थी स्कूल में फ़ीस देकर पढ़ते और अध्यापक वेतन लेकर पढ़ाते हैं। परन्तु पहले ऐसा न था। पूर्वकाल में जब विद्यार्थी पढ़ाई समाप्त कर लेता था तब उससे जो कुछ बन पड़ता था, वह गुरु की भेंट करता था। धनियों और राजाओं के पुत्र धन-सम्पत्ति भेंट करके गुरु का ऋण चुकाते थे। दयानन्द के पास क्या था जो गुरु की भेंट करते। मुट्ठी भर लौंग लेकर गुरुजी की सेवा में उपस्थित हुए और उनके चरणों में सीस रख कर बोले—भगवन्, आपने मुझे ज्ञान की आँखें दी हैं; वेद के प्रकाश से मेरे मन-मन्दिर को प्रकाशित किया है। मैं आपके उपकारों का बदला किसी प्रकार भी नहीं चुका सकता। मैं निर्धन हूँ। धन-दौलत पास नहीं जो श्रीचरणों में भेंट कर सकूँ। केवल ये लौंग ही हैं। इन्हें स्वीकार कीजिए।

गुरुदेव का हृदय प्रिय शिष्य की जुदाई के विचार से भर आया। उनके मुँह से बात न निकलती थी। वे उनके सिर पर हाथ रखकर बोले—"पुत्र ! मैं तुम्हारे लिए परमेश्वर से मङ्गल-कामना करता हूँ। भगवान् तुम्हारी विद्या को सफल करें ! परन्तु मैं इन लोगों की दक्षिणा नहीं चाहता। मुझे तो एक दूसरी वस्तु की आवश्यकता है और वह वस्तु तुम्हारे पास है।"

स्वामी दयानन्द ने निवेदन किया—"परम पूज्य गुरुदेव, मेरा तन-मन सब आपकी भेंट है। जो आज्ञा हो, जी-जान से पालन करूँगा। क्या आदेश है, कहिए।"

यह सुनकर अंधे गुरु के नेत्रों में प्रसन्नता के आँसू आगये। वे असीस देकर बोले—"प्यारे, इस समय संसार में अविद्या-अंधकार फैल रहा है, लोग सच्चे वैदिक धर्म्म को भूलकर झूठे मत-मतान्तरों में फँसे हुए दुःख पा रहे हैं। ऋषि-मुनियों के ग्रन्थों को छोड़ कर वे थोड़ी बुद्धि वाले लोगों की बनाई पुस्तकों को धर्म्म-ग्रन्थ मान रहे हैं। मिट्टी और पत्थर की जड़ मूर्त्ति को सर्वशक्तिमान् परमेश्वर मान कर पूजते हैं। जाओ, इन भूले-भटके लोगों को सच्चे धर्म्म का मार्ग दिखाओ। अंधकार से निकाल कर इन्हें प्रकाश में लाओ। पत्थर की जगह परमेश्वर की पूजा का प्रचार करो। भारत में अनाथ और दीन लोग अपार दुःख पा रहे हैं। उनका दुःख दूर करो।

प्यारे पुत्र, मैं यही दक्षिणा चाहता हूँ। मुझे सांसारिक वस्तुओं की आवश्यकता नहीं।"

अपने सारे सुखों को छोड़ कर सारा जीवन संसार की सेवा में लगा देना कोई साधारण काम नहीं। यह काम कितना कठिन है, इसे स्वामी दयानन्द खूब समझते थे। फिर भी उन्होंने गुरुजी की आज्ञा के एक एक शब्द को स्वीकार किया और बोले—"भगवन्, आपका यह शिष्य जी-जान से महाराज की आज्ञा का पालन करेगा।"

तब गुरु ने असीस देकर कहा—बहुत अच्छा, दयानन्दजी, जाइए। जगदीश्वर आपके सभी प्रयत्न सफल करें। एक बात याद रखना। मनुष्यों के बनाये हुए ग्रन्थों में परमात्मा और ऋषि-मुनियों की निन्दा भरी पड़ी है। परन्तु ऋषियों के ग्रन्थों में यह दोष बिलकुल नहीं। ऋषियों और साधारण मनुष्यों की पुस्तकों की यही बड़ी पहचान है। इस कसौटी को कभी हाथ से न छोड़ना।

स्वामीजी महाराज गुरुदेव के चरणों में सीस नवा कर मथुरा से आगरा चले आये और वैदिक धर्म्म का प्रचार करने लगे।

———

पाखण्ड-खण्डिनी पताका ।—पृ० २३

चौथा परिच्छेद

पाखण्ड-खण्डिनी पताका

हरिद्वार में प्रत्येक बारह वर्ष के बाद कुम्भ का भारी मेला होता है। हिन्दू स्त्री-पुरुष और साधु लाखों की संख्या में वहाँ इकट्ठे होते हैं। वे समझते हैं कि कुम्भ पर गंगा में स्नान करने से पाप धुल जाते हैं और मुक्ति मिल जाती है—मनुष्य मर कर फिर जन्म लेने से छूट जाता है। संवत् १९२४ के चैत्र मास में ऐसा ही भारी कुम्भ का मेला था। स्वामीजी भी धर्म्म-प्रचार के विचार से वहाँ जा पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने क्या देखा कि साधु और पण्डे धर्म्म का उपदेश देकर लोगों को सीधे रास्ते पर लाने की जगह उलटा पाखंड करके उन्हें लूट रहे हैं। सत्य धर्म्म पर चलने के स्थान में संसार अज्ञान के गहरे गढ़े में गिर रहा है। हर की पैड़ी हाड़ की पैड़ी बन रही है। और गङ्गा में डुबकी लगाने से ही सब पाप दूर हो जाते हैं, इस विश्वास से लोग अंधाधुन्ध नदी में डुबकियाँ लगा रहे हैं।

इस दृश्य को देखकर दुनिया को दुःखों से छुड़ाने का व्रत लेनेवाले महात्मा के हृदय पर गहरी चोट लगी। उन्होंने साधुओं और पण्डों के इस पाखण्ड की पोल खोलने का निश्चय किया। बस फिर क्या था, एक दिन यात्रियों ने देखा कि हरिद्वार से

हृषीकेश को जानेवाली सड़क पर एक लँगोट-बंद संन्यासी हाथ में झण्डी लिये सिंह के समान गरज गरज कर उपदेश दे रहा है। उसकी झण्डी पर "पाखण्ड-खण्डिनी पताका" लिखा हुआ है। वह साधुओं और पण्डों की करतूतें दिखला कर गङ्गा-माहात्म्य की धज्जियाँ उड़ा रहा है।

सच्चे संन्यासी की गरज से उस बड़े मेले में भारी हलचल मच गई। आज तक लोगों ने किसी संन्यासी को श्राद्ध, मूर्त्ति-पूजा, अवतार और गङ्गा-स्नान से मुक्ति मिलने का खण्डन करते और पुराणों को झूठा कहते नहीं सुना था। इसलिए सहस्रों की संख्या में नर-नारी उसका उपदेश सुनने के लिए आने लगे। स्वामीजी सबसे यही कहते—हर की पैड़ी पर नहाने से पाप नहीं धुलते। वेद की शिक्षा पर चलो। अच्छे काम करो। इसी से सुख और मुक्ति मिलेगी। धर्म्मग्रन्थों का पढ़ना-सुनना और धर्मात्मा पुरुषों की सत्संगति ही सच्चा तीर्थ है।

आने को तो सहस्रों लोग उपदेश सुनने आते, परन्तु वे केवल सुनकर ही चले जाते। उन पर चलनेवाला एक भी न निकलता। यह देख स्वामीजी को निराशा हुई। उन्होंने सोचा, मेरे तप में कुछ कमी है जो मेरी बात का कुछ असर नहीं होता। बस, उन्होंने तपस्या करने की ठान ली।

अपने सब वस्त्र उतार कर फेंक दिये। महाभाष्य की एक कापी, सोने की एक मुहर और मलमल का एक थान गुरुदेव के चरणों में मथुरा भेज दिया। कैलास पर्वत नाम के साधु ने पूछा—महाराज आप यह क्या कर रहे हैं? स्वामीजी ने उत्तर दिया—जब तक अपनी आवश्यकताओं को कम न किया जाय, पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होती, और कार्य में सफलता भी नहीं हो सकती। वैदिक धर्म्म के विरुद्ध जितने भी पन्थ और मत फैल रहे हैं मैं उन सबका खुले तौर पर खण्डन करना चाहता हूँ। इसलिए सांसारिक आवश्यकताओं और सुख-दुःख से ऊपर होना चाहता हूँ।

स्वामीजी ने पुस्तकें आदि छोड़ कर सारे शरीर पर राख रमा ली; और तन पर केवल एक कौपीन रख कर चुप रहने का व्रत ले लिया। जो शेर आदमी किसी समय लाखों के समूह में गरजता था, जिसकी गरज से झूठे मतों और पंथों के दिल दहल रहे थे, वह अब चुप होकर अपनी कुटी में बैठ गया। बात-चीत करना बंद होगया। परन्तु कब तक? जिस महात्मा ने यह पाठ पढ़ा हो कि चुप रहने से सत्य बोलना अच्छा है, वह कब तक चुप रह सकता था? एक दिन किसी ने उनकी कुटी के निकट आकर संस्कृत में कहा कि वेद से भागवत पुराण अच्छा है। इस झूठ को सुनकर महाराज ने

फ़ौरन मौन-व्रत छोड़ दिया और भागवत पुराण के खंडन में लग गये।

अब स्वामी दयानन्द नगर नगर और स्थान स्थान में घूम कर वैदिक धर्म्म का प्रचार करने लगे। उनकी प्रतिज्ञा थी कि वेद में मूर्त्ति-पूजा की आज्ञा नहीं। बहुत से लोग उनके साथ शास्त्रार्थ करने आते, परन्तु हार खाकर चले जाते। कर्णवास में हीरावल्लभ नाम के एक बहुत बड़े पण्डित थे। वे नौ और पण्डितों को साथ लेकर स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने आये। आते हुए साथ वे पत्थर की एक मूर्त्ति भी उठा लाये और प्रतिज्ञा की कि जब तक दयानन्द से इसकी पूजा न करा लूँगा, वापस न जाऊँगा। कोई एक सप्ताह तक रोज़ नौ नौ घंटे शास्त्रार्थ होता रहा। दोनों ओर से बड़ी तेज़ी के साथ संस्कृत बोली जाती थी। अन्तिम दिन पण्डितजी उठे और ऊँचे स्वर से कहने लगे—स्वामीजी महाराज जो कुछ कहते हैं, वह सब ठीक है। इतना कहकर उन्होंने अपनी मूर्त्तियाँ उठाईं और गङ्गा में फेंक दीं। उनको देखकर बाक़ी पण्डितों और नगर-निवासियों ने भी अपनी अपनी मूर्त्तियाँ घर से लाकर गङ्गा की भेंट कर दीं। हीरावल्लभजी ने मूर्त्तियों की जगह सिंहासन पर वेद को स्थापित कर दिया।

कर्णवास में इस शास्त्रार्थ की बड़ी धूम मच गई। बहुत से ठाकुर लोग स्वामीजी महाराज के पास आकर उपदेश लेने

लगे। स्वामीजी उन्हें जनेऊ देकर पतित-पावनी, त्रिलोक-तारिणी भगवती गायत्री का गुरु-मंत्र देते थे। गङ्गा के किनारे घूमते हुए भगवान् दयानन्द ने इस प्रकार गायत्री के उपदेश से सहस्रों नर-नारियों को धर्म का अमृत पिला कर उनका कल्याण किया।

पाँचवाँ परिच्छेद

प्राण-घातक आक्रमण

स्वामी दयानन्द सच्चे संन्यासी थे। वे सबकी भलाई के लिए धर्म्म का उपदेश देते थे। सत्य कहने में वे किसी से न डरते थे। उनका उपदेश था कि पत्थर की पूजा से परमेश्वर नहीं मिलता। निराकार परमेश्वर का जन्म अर्थात् अवतार नहीं होता। गङ्गा-स्नान से शरीर का मैल तो बेशक धुल सकता है परन्तु पाप दूर नहीं होते। ब्राह्मणों को श्राद्ध खिलाने से पितरों को कुछ नहीं पहुँचता। अपने अच्छे कर्मों से ही लोक और परलोक में सुख मिलता है। जन्म से सभी लोग शूद्र होते हैं; अपने गुण, कर्म और स्वभाव से ही वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र बनते हैं। जो वेद-विद्या का जाननेवाला, सदाचारी, त्यागी और परोपकारी है, उसका जन्म चाहे भंगी के घर में हुआ हो, वही सच्चा ब्राह्मण है। जो मनुष्य मूर्ख, दुराचारी और अपने ही स्वार्थ में लीन है वह ब्राह्मण नहीं। मनुष्य-समाज के लिए शूद्र भी वैसा ही आवश्यक है जैसा कि ब्राह्मण। इसलिए ऊँच-नीच और छूत-छात का भाव ठीक नहीं। सब आर्यों को आपस में जन्म की जात-पाँत का विचार छोड़कर गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार

रोटी-बेटी का संबंध करना चाहिए। जो मुसलमान और ईसाई वैदिक धर्म्म में आना चाहे उसे शुद्ध करके ले लेना चाहिए।

स्वामीजी के सच्चे उपदेशों को सुनकर कई स्वार्थी और मन्द-मति लोग उनके शत्रु बन गये। वे उन्हें जान से मार डालने के उपाय सोचने लगे।

[१]

अनूपशहर की बात है, एक ब्राह्मण स्वामीजी के पास आया। बड़ी नम्रता के साथ झुक कर उसने एक पान आपको भेंट किया। महाराज ने सहज स्वभाव से वह पान मुँह में रख लिया। उसका रस लेते ही वे जान गये कि उसमें विष मिला है। परन्तु उन्होंने उस नीच और पाजी को कहा-सुना कुछ नहीं। झट गङ्गा पर जाकर वस्ती और न्योली कर्म-द्वारा सारा विष शरीर से निकाल दिया और फिर आसन पर आकर विराजमान होगये।

इन दिनों सैयद मुहम्मद वहाँ तहसीलदार थे। वे महाराज के बड़े भक्त थे। जब उन्होंने विष देने की बात सुनी तो फ़ौरन उस धूर्त को पकड़वा कर हवालात में डाल दिया। फिर वे स्वामीजी के दर्शनों के लिए गये। वे मन में सोचते थे कि मैंने स्वामीजी के शत्रु को क़ैद करके उनका बदला लिया है। इससे आज महाराज मुझे असीस देंगे। परन्तु जब वे

स्वामीजी के पास पहुँचे तो प्रसन्न होना तो दूर, स्वामीजी ने उनसे मुँह फेर लिया, और बोलना तक बंद कर दिया। यह देख तहसीलदार साहब ने अप्रसन्नता का कारण पूछा। तब स्वामीजी ने कहा—"हमने सुना है कि आपने मेरे लिए एक मनुष्य को क़ैद किया है। मैं मनुष्यों को छुड़ाने आया हूँ, क़ैद कराने के लिए नहीं। यदि दुष्ट लोग दुष्टता को नहीं छोड़ते तो हम अपनी शिष्टता को क्यों छोड़ें?" स्वामीजी के ये शब्द सुन उनके रोंगटे खड़े होगये। अपने घातक को इस प्रकार क्षमा कर देनेवाला मनुष्य उन्होंने न देखा और न सुना था। महाराज को हाथ जोड़ नमस्कार कर वे वहाँ से उठ आये और आते ही उस ब्राह्मण को छोड़ दिया।

[२]

भगवान् दयानन्द धर्म्म-प्रचार करते हुए कर्णवास में जा निकले। वहाँ कर्णसिंह नाम का एक ठाकुर बड़ा कट्टर मूर्त्ति-पूजक था। मूर्त्ति-पूजा का खण्डन सुनकर उसे बड़ा क्रोध आया। वह महाराज के पास आकर बड़े अविनीत भाव—गुस्ताख़ी—से कहने लगा—"हम तुमसे बातचीत करने आये हैं। हमने सुना है कि तुम अवतारों और गङ्गाजी की निन्दा करते हो। याद रखो यदि मेरे सामने निन्दा की तो बुरी तरह से पेश आऊँगा।"

महाराज बोले—"मैं निन्दा नहीं करता हूँ। जो बात जैसी है उसे वैसा ही कहता हूँ। गङ्गा भी जैसी और जितनी है उतनी ही बताता हूँ। सत्य को प्रकट करने में किसी से नहीं डरता।"

"तो फिर गङ्गा कितनी है ?"

महाराज अपना कमण्डलु उठा कर बोले—"मेरे लिए तो इतना ही जल पर्याप्त है। सो यह इतनी ही है।"

राव कर्णसिंह बोला—"तो 'गङ्गा गङ्गेति' आदि श्लोकों में जो गङ्गा का नाम जपने, दर्शन करने तथा छूने से पाप कटना लिखा है ?"

स्वामीजी—" ये श्लोक साधारण लोगों के गढ़े हुए हैं। माहात्म्य सब गप है। पापों का नाश और मुक्ति वेदों के अनुसार उत्तम कर्म करने से होती है।"

आपने फिर पूछा—"राव साहब, आपके माथे पर यह लकीर सी क्या है ?" राव साहब ने उत्तर दिया—"यह श्री है। जो इसको नहीं लगाता, वह चाण्डाल है।"

स्वामीजी—"आप कब से श्री लगाते हैं ?"

"कुछ वर्षों से।"

"क्या आपके पिता भी वैष्णव-मत के माननेवाले थे ?"

"नहीं, वे नहीं थे।"

"तब तो आपके कथन के अनुसार आपके पिता और कुछ वर्ष पहले आप भी चाण्डाल साबित हुए।"

इस बात पर राव महाशय को क्रोध आगया। वह तलवार पर हाथ रखकर बोला—"मुँह सँभाल कर बोल।" कर्णसिंह के साथ दस बारह मनुष्य शस्त्र लिये हुए थे। वे भी लड़ने के लिए तैयार होगये। परन्तु स्वामीजी महाराज के चेहरे पर भय या घबराहट की झलक तक न थी। उन्होंने हँसते हुए कहा—"राव साहब, यदि शास्त्रार्थ करना है, तो अपने गुरु अङ्गदाचार्य को वृन्दावन से बुलवा लीजिए। और यदि तलवार से लड़ना चाहते हो तो संन्यासी से क्यों टकराते हो, जयपुर या जोधपुर से जा भिड़ो।"

बस फिर क्या था। राव महाशय के क्रोध की कोई सीमा न रही। वह गालियाँ बकने लगा। उसकी आँखों से चिंगारियाँ निकलने लगीं। उसने तलवार निकाल ली। तब स्वामीजी ने ललकारा कि क्षत्रिय का धर्म्म है कि या तो तलवार म्यान से निकाले नहीं, और यदि निकाले तो फिर शत्रु का वध किये बिना उसे म्यान में न डाले। मैं संन्यासी हूँ। गर्दन कट जाने के डर से भी सत्य कहने से नहीं रुकूँगा। कर्णसिंह स्वामीजी पर लपका। स्वामीजी ने "अरे पाजी!" कहते हुए उसे परे ढकेल दिया। परन्तु वह क्रोध के जोश में दुबारा उठकर स्वामीजी

रावसाहब कर्णसिंह और स्वामी दयानन्द।—पृ० २२

पर तलवार की चोट करने दौड़ा। वह तलवार चलाना ही चाहता था कि स्वामीजी ने झपट कर उसे छीन लिया और उसके दो टुकड़े करके परे फेंक दिया। फिर आपने राव महाशय का हाथ पकड़ कर कहा—क्या तुम चाहते हो कि मैं भी अत्याचारी पर चोट करके बदला लूँ? राव महाशय का मुख पीला पड़ गया। शरीर मुरझा गया। उस समय दयालु दयानन्द ने कहा—"मैं संन्यासी हूँ। तुम्हारे किसी भी व्यवहार से चिढ़ कर तुम्हारा बुरा नहीं करूँगा। जाओ, भगवान् तुम्हें सुमति दें"।

कर्णसिंह की सारी शेखी किरकिरी हो गई। लज्जा के मारे वह पानी पानी हो गया और उठ कर घर चला आया। परन्तु बदला लेने का भाव उसके हृदय में बराबर बना रहा। कुछ दिन बाद स्वामीजी फिर कर्णवास आये तो एक रात उसने अपने नौकरों को तलवारें दे कर कहा कि यदि तुम दयानन्द को मार आओगे तो मैं तुम्हें बहुत-सा धन इनाम दूँगा। रुपये के लोभ से वे लोग चले तो गये परन्तु महाराज की कुटी के पास पहुँचते ही उनके पाप काँप उठे और वे डर के मारे वापस भाग आये। सच है जिसके मन में पाप होता है उसके पैर नहीं होते।

कर्णसिंह ने तीसरी बार फिर उन्हें ज़ोर देकर भेजा और कहा कि यदि अब के भी तुम दयानन्द की हत्या न करोगे तो

मैं तुम्हें घोर दण्ड दूँगा। मरता क्या न करता, बेचारे तलवारें ले कर आधी रात के समय स्वामीजी को मारने चले। परन्तु

जाको राखे साइयाँ मार सकहि नहिं कोइ।
बाल न बाँका कर सकहि जो जग वैरी होइ॥

ज्योंही वे कुटी के निकट पहुँचे महाराज ने उनके पाँवों की आहट सुन ली। वे सिंह के समान निडर होकर बाहर निकले और इतने ज़ोर से हुंकार नाद—हूँ हूँ का शब्द—किया कि वे भाड़े के टट्टू मारे डर के अपने पैर सिर पर रखकर भागे। उन्होंने कर्णसिंह के पास पहुँच कर ही दम लिया।

कहते हैं, कर्णसिंह आयु भर स्वामीजी से बदला लेने का यत्न करता रहा और अपने अन्तिम दिनों में पागल होकर मरा।

[३]

एक दिन की बात है, स्वामीजी महाराज बैठे धर्म का उपदेश कर रहे थे। नर-नारी बहुत ध्यान से सुन रहे थे। इतने में एक धूर्त पुजारी आया और एक विषैला साँप महाराज पर फेंक कर बोला—लो महादेव आप ही निर्णय कर देंगे कि आप सच्चे हैं या मैं। साँप महाराज की टाँगों को चिमट गया। स्वामीजी ने उसे छुड़ा कर अपने डण्डे से उसका सिर कुचल
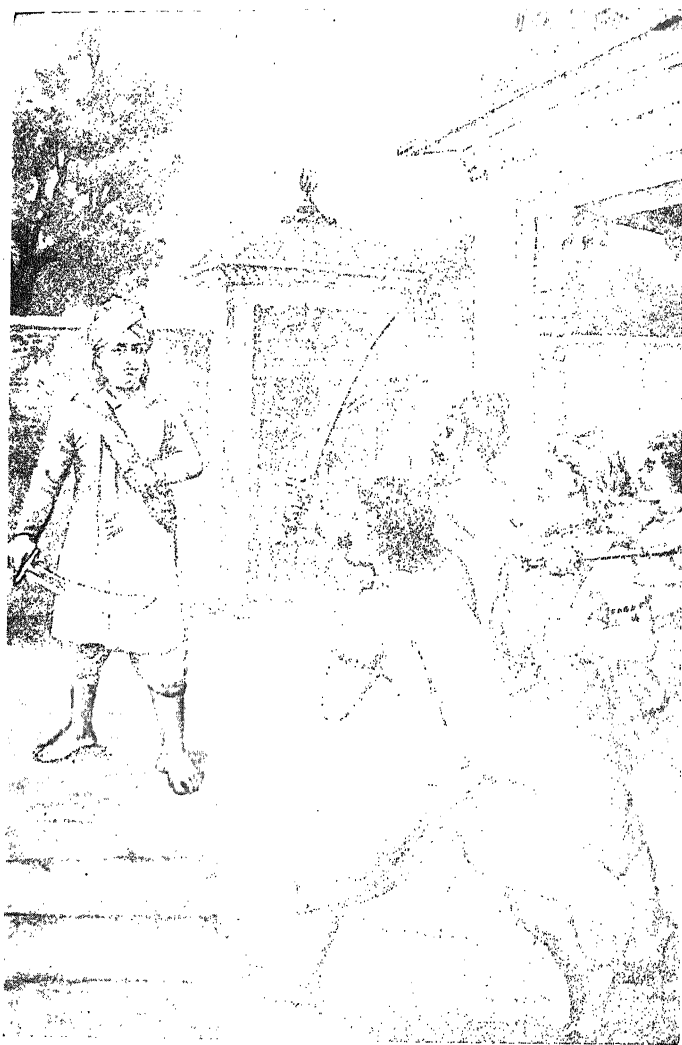
शाक्त लोग और स्वामी दयानन्द ।—पृ० ३५

डाला और ब्राह्मण से कहने लगे—तेरे देवता ने तो देर लगाई; पर मैंने शीघ्र ही फ़ैसला कर दिया। फिर वहाँ बैठे हुए लोगों से आपने कहा—जाओ, दूसरे लोगों को भी समझा दो कि झूठे देवताओं का इस प्रकार नाश होता है।

[४]

संवत् १९३३ विक्रमी की बात है। चाँदापुर में श्री० बख्तीरामजी मुरादाबादी और श्री० इन्द्रमनजी स्वामीजी के पास बैठे हुए थे। उस समय महाराज ने लोगों को यह आपबीती कथा सुनाई—

"जिन दिनों मैं अकेला घूमा करता था, उन दिनों मेरा एक ऐसे स्थान में जाना हुआ जहाँ सब शाक्त ही शाक्त लोग बसते थे। उन लोगों ने मेरी ख़ूब टहल-सेवा की। कुछ दिन ठहरने के बाद जब मैं वहाँ से चलने लगा तो उन्होंने ज़ोर देकर मुझे ठहरा लिया। मैं समझा, भक्तिभाव से मुझे ठहराते हैं। कुछ दिन बाद उनका एक त्योहार आया। सारे शाक्त—शक्ति को माननेवाले—देवी के मन्दिर में इकट्ठे होकर गीत गाने लगे। उन्होंने मुझे भी कहा कि आप भी हमारे मेले में चलिए। मैंने कहा, मेरा देवी पर विश्वास नहीं। उन्होंने कहा, कोई बात नहीं, आप मूर्त्ति को नमस्कार आदि न कीजिए, परन्तु चलिए

अवश्य । यदि आप नहीं चलेंगे तो हमारा उत्साह टूट जायगा। मेरे पैरों पड़ कर वे मुझे मन्दिर में ले ही गये ।

मन्दिर नगर से बाहर एक ऊजड़ स्थान में था। आँगन में होम हो रहा था। लोग उत्सव मना रहे थे। दुर्गा की मूर्ति दिखाने के बहाने वे मुझे भीतर ले गये। मैं सहज स्वभाव से मूर्त्ति के सामने जा खड़ा हुआ। मूर्त्ति के निकट ही एक बलवान् मनुष्य तलवार लिये खड़ा था ।

अब ये लोग मुझे कहने लगे कि महात्माजी, माता के आगे झुक कर प्रणाम अवश्य कीजिए। मैंने स्पष्ट कहा कि मुझसे ऐसी आशा मत रक्खो। इस पर पुजारी चिढ़ गया और मेरा गर्दन पकड़ कर मेरे सिर को नीचा करने लगा। इससे मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। परन्तु ज्यों ही मैंने दृष्टि फिराई तो क्या देखा कि वह खड्गधारी मनुष्य मेरे निकट आ गया है और मेरी गर्दन पर तलवार बरसाना ही चाहता है। यह देख मैं सावधान होगया। मैंने झपट कर उसके हाथ से तलवार छीन ली। पुजारी मेरे एक ही धक्के से गिर पड़ा। मैं तलवार लेकर मन्दिर के आँगन में आ गया। सब लोग कुल्हाड़ा, छुरी और शस्त्र लेकर मुझ पर टूट पड़े। द्वार की ओर देखा तो ताला लगा हुआ था। बलिदान से अपने को बचाने के लिए मैं उछल कर दीवाल पर चढ़ गया और बाहर

कूद कर भाग गया। मन्दिर के निकट ही एक घना वन था। दिन भर मैं वहीं छिपा रहा। रात होने पर भाग कर दूसरे गाँव में चला गया। तब से मैंने शाक्त लोगों का कभी विश्वास नहीं किया"।

[५]

स्वामीजी को पाखंड का खंडन और सत्य का मंडन करते देख दुष्ट लोगों ने उन्हें सोते पाकर नदी में फेंक देने का निश्चय किया। एक दिन रात के समय एक साधु अचेत सो रहा था। धूर्तों ने समझा, दयानन्द सो रहे हैं। झट उस बेचारे को उठाकर गङ्गा में फेंक दिया और भाग गये। वह चिल्लाया तो स्वामीजी ने नदी में कूद कर उसे बाहर निकाला।

[६]

एक बार स्वामीजी पर्णकुटी—घास फूस की झोपड़ी—में आसन रमाये बैठे थे। कुटी के पास ही कुछ साधु रहते थे। वे बिना कारण ही स्वामीजी को देखकर जलते थे। एक दिन घोर अँधेरी रात में वे लोग कुटिया के पास आकर महाराज को मार डालने की युक्ति सोचने लगे। स्वामीजी को उनकी बातें सब सुनाई देती थीं। अन्त को उन पाजियों ने उस झोपड़ी में आग लगा दी। जब आग की लपटें निकलने लगीं तो महाराज छप्पर को उठाकर बाहर निकल आये।

[७]

पुष्प-वर्षा

स्वामीजी महाराज वैदिक धर्म्म का प्रचार करते हुए आषाढ़ संवत् १९३४ में अमृतसर पहुँचे। अमृतसर में उन दिनों रामदत्त नाम के एक बहुत बड़े पण्डित रहते थे। पौराणिक लोगों ने पण्डितजी से स्वामीजी के साथ शास्त्रार्थ करने को कहा। पर पण्डितजी ने न माना। वे बोले, स्वामी दयानन्द वेद-शास्त्र के धुरन्धर विद्वान् हैं। मैं उनके सामने नहीं ठहर सकता। पर लोगों ने उनका पीछा न छोड़ा। इसलिए वे तङ्ग आकर, अमृतसर छोड़, हरिद्वार चले गये।

एक दिन एक पाठशाला के पण्डित ने अपने छोटे छोटे विद्यार्थियों से कहा, आज रात हम व्याख्यान सुनने चलेंगे। तुम भी हमारे साथ चलना और अपनी झोलियों में ईंटों के रोड़े भर लेना। जब मैं इशारा करूँ, तब तुम व्याख्यान देनेवाले पर उन्हें फेंकने लग जाना। इसके बदले में कल मैं तुम्हें लड्डू दूँगा।

वे अबोध बालक अध्यापक के बहकाने में आगये। वे झोलियों में ईंटों के रोड़े भर कर व्याख्यान के स्थान पर आ पहुँचे। ज़रा अँधेरा होते ही, अध्यापक का इशारा पा, उन्होंने

स्वामी दयानन्द पर ईंटें बरस रहे हैं।—पृ० २६

स्वामीजी पर रोड़े बरसाना आरम्भ कर दिया। इससे सारी सभा में हलचल मच गई। एकाध ईंट स्वामी जी के भी लगी। परन्तु स्वामीजी ने सभा को शान्त करते हुए कहा—जहाँ आज ईंटें बरस रही हैं वहीं किसी दिन फूल बरसेंगे।

पुलिस ने उन उपद्रवी बालकों में से कुछ एक को पकड़ लिया। तब वे चिल्ला चिल्ला कर रोने लगे। जब उनसे ईंटें फेंकने का कारण पूछा तो वे बोले—हमारे पण्डितजी ने कहा था कि तुम रोड़े बरसाओगे तो कल मैं तुम्हें लड्डू दूँगा। स्वामीजी को उन पर दया आगई। आपने उसी समय बाज़ार से लड्डू मँगाकर उनको बाँट दिये और कहा, तुम्हारा अध्यापक तो शायद तुम्हें लड्डू देगा या नहीं, पर मैं तुम्हें अभी दिये देता हूँ। लो, फिर किसी के बहकाने में आकर ऐसा उपद्रव न करना, नहीं तो दुःख पाओगे। इतना कह कर आपने उन्हें छुड़ा दिया।

महाराज का कथन सत्य हुआ। शीघ्र ही अमृतसर में आर्य-समाज खुल गया। जो लोग महाराज पर ईंटें बरसाते थे वही बड़े होकर उनके भक्त बन गये।

छठा परिच्छेद

ब्रह्मचर्य का बल

[१]

स्वामी दयानन्द केवल अद्वितीय विद्वान् ही न थे। ब्रह्मचर्य के प्रताप से उनका शरीर भी बहुत बलवान् था।

जालंधर में एक दिन सरदार विक्रमसिंहजी ने विनती की कि सुनते हैं, ब्रह्मचर्य से मनुष्य बड़ा बलवान् बन जाता है। क्या यह सच है?

स्वामीजी ने उत्तर दिया कि हाँ, बिलकुल सच है।

तब सरदार साहब बोले कि महाराज आप भी तो ब्रह्मचारी हैं। हमें आपमें कोई विशेष बल तो मालूम नहीं होता। महाराज ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। सरदार साहब बड़ी देर तक सत्संग में बैठे रहे। चलते समय जब प्रणाम करके गाड़ी में सवार हुए तो महाराज ने उनकी गाड़ी को पीछे से पकड़ लिया। विक्रमसिंहजी ने घोड़ों को बहुतेरे कोड़े लगाये, परन्तु गाड़ी अपनी जगह से न हिली।
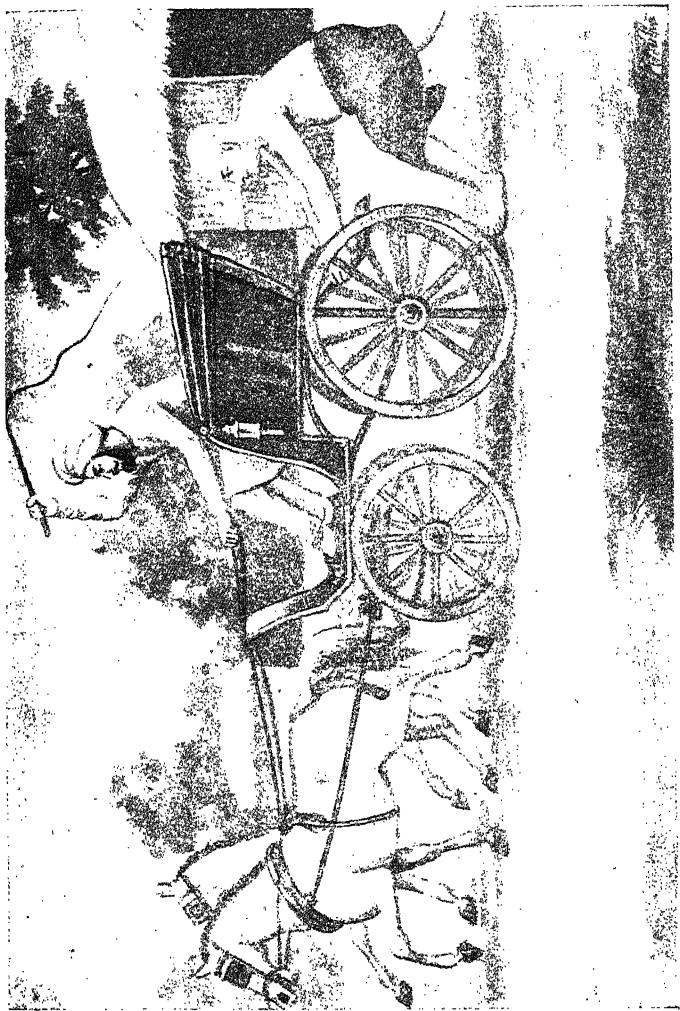
सरदार साहब ने जब पीछे की ओर मुड़ कर देखा तो महाराज ने गाड़ी छोड़ दी और कहा कि ब्रह्मचर्य के बल का प्रमाण आपको मिल गया। सरदार महाशय स्वामीजी के बल को देखकर दंग रह गये।

[२]

काशी में स्वामीजी महाराज इस्लाम की पोल खोलते और इसके सिद्धान्तों की ख़ूब धज्जियाँ उड़ाया करते थे। इससे कुछ मुसलमान बहुत अप्रसन्न हुए। एक दिन स्वामीजी गङ्गा-तट पर आसन लगाये बैठे थे। संयोग से मुसलमानों की एक टोली भी वहाँ घूमती हुई आ गई। उस मण्डली में से कुछ लोगों ने स्वामीजी को पहचान कर कहा—यह वही बाबा है जो कुछ दिन हुए हमारे धर्म के विरुद्ध व्याख्यान दे रहा था। उनमें से दो मनुष्य बहुत अधिक जोश में आ गये। वे स्वामीजी को उठा कर गङ्गा में फेंकने लगे। इन दोनों ने स्वामीजी की दोनों भुजाएँ कंधों के पास से मज़बूती के साथ पकड़ लीं। वे उन्हें झुला कर गङ्गा में फेंकना ही चाहते थे कि स्वामीजी ने अपनी दोनों बाँहें सिकोड़ कर शरीर के साथ लगा लीं और ज़ोर से आगे की ओर उछल कर उन दोनों मनुष्यों-समेत वे पानी में कूद पड़े।

इन दोनों व्यक्तियों के हाथ कुछ देर तक शिकंजे में कसे रहे, परन्तु नदी में डुबकी लगाते समय उन पर दया करके महाराज ने उन्हें छोड़ दिया। वे दोनों बड़ी मुश्किल से पानी से बाहर निकले। वे और उनके साथी हाथ में मिट्टी के ढेले आदि लिये बड़ी देर तक नदी के किनारे खड़े देखते रहे कि वह बाबा सिर निकाले तो उसे मारें। स्वामीजी भी उनके विचार को जानते थे। उन्होंने साँस को रोक लिया और पानी की तह में पलथी मारे बैठे रहे। अँधेरा हो जाने पर इस मण्डली ने मन में यह समझा कि वह बाबा डूब गया है। इसलिए वे चले गये। इसके बाद स्वामीजी भी जल से बाहर निकल अपने आसन पर आ विराजे।

[३]

दुष्ट लोग महाराज को प्रत्येक प्रकार से हानि पहुँचाने की कोशिश करते थे। एक समय स्वामीजी मथुरा में प्रचार कर रहे थे। कुछ एक दुष्टों ने उनको बदनाम करने के लिए एक वेश्या को उनके स्थान पर भेज दिया। रास्ते में तो वह बहुत बड़बड़ाती रही। परन्तु सभा में जाकर जब उसने महाराज के तेजस्वी मुख-मण्डल के दर्शन किये तब उसके मन का मैल एकदम धुल गया। उसके हृदय में महर्षि के प्रति श्रद्धा और भक्ति उत्पन्न होगई।

मैंने इस महात्मा को बदनाम करने की सोची थी, यह मुझसे भारी पाप हुआ, ऐसा सोच कर उसे बड़ा दुःख और पश्चात्ताप हुआ। उसने स्वामीजी के सामने जाकर भूमि पर सिर रख दिया और क्षमा माँगने लगी। रोते रोते उसका अंचल भी भीग गया। श्रीस्वामीजी ने उसे ढाढ़स दी और कहा—"देवी! जाओ, तुम्हारा इस समय का यह शुद्ध भाव चिर काल तक बना रहे!"

—

सातवाँ परिच्छेद

योगीश्वर दयानन्द

ब्रह्मचर्य और तप के बल से ही मृत्यु को जीता जाता है। इसी से महर्षि दयानन्द ने घोर तप किया था। योग में उनका अभ्यास इतना बढ़ा हुआ था कि वे अठारह अठारह घंटे की समाधि लगा लेते थे। उन्होंने भूख-प्यास और गरमी-सरदी सबको जीत लिया था। पौष-माघ का कड़कड़ाता जाड़ा पड़ता था। जोहड़ों का जल जम जाता था। परन्तु तपस्वी दयानन्द केवल एक कौपीन पहने गङ्गा की अत्यंत ठंडी बालू पर पद्मासन लगाये सारी सारी रात बिता देते थे। महाराज को इस अवस्था में देखकर यदि कोई भक्त उन पर कम्बल भी डाल जाता तो वे उसे नहीं ओढ़ते थे।

[१]

एक समय की बात है। माघ का महीना था। पछुवा का अत्यन्त शीतल पवन बड़े वेग से बह रहा था। स्वामीजी महाराज स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर कुटी के बाहर पलथी मारे बैठे थे। बहुत से ठाकुर लोग दर्शनों के लिए आये हुए

थे। उन्होंने रुई और ऊन के निहायत गरम कपड़े पहन रक्खे थे, फिर भी जाड़े के कारण उनका शरीर काँप रहा था। हाथ-पाँव ठिठुर रहे थे। दाँत से दाँत बज रहे थे। परन्तु स्वामीजी महाराज बड़े ज़ोर-शोर से बराबर उपदेश कर रहे थे। शीतल वायु तीर की तरह तन को चीरती जाती थी, किन्तु वे काँपते तक न थे।

उस समय ठाकुर गोपालसिंहजी ने हाथ जोड़ कर पूछा—महाराज, हम इतने कपड़े पहनने पर भी सरदी के मारे सिकुड़े जा रहे हैं, परन्तु आप पर शीत का कुछ भी असर नहीं होता। इसका कारण क्या है?

महाराज ने उत्तर दिया—ब्रह्मचर्य और योगाभ्यास ही इसका कारण है।

उसने कहा—तो हम कैसे जानें?

तब महाराज ने अपने हाथों के अँगूठे घुटनों पर रख कर इस ज़ोर से दबाये कि तत्काल उनके मस्तक पर, ओस के बिन्दुओं के सदृश, पसीने की बूँदें चमकने लगीं। तन पर रमाई हुई सारी मिट्टी भीग गई। बगलों में से पसीना टपटप करके टपक पड़ा। यह देख सभी लोग स्वामीजी महाराज के योग-बल की प्रशंसा करने लगे।

[२]

कर्णवास से चलकर स्वामीजी ग्राम ग्राम में घूमने लगे। एक रात आप गङ्गा के दूसरे किनारे समाधि लगाये बैठे थे। रात अधिक बीत चुकी थी। इसलिए गङ्गा के बहने के सिवा और कोई शब्द न सुनाई देता था। चन्द्रमा की चाँदनी खूब छिटक रही थी। उससे पृथिवी और आकाश प्रकाशमान् हो रहे थे। इसके साथ गङ्गा की धारा नीलम की लंबी रेखा के समान दृश्य के सौन्दर्य को और भी बढ़ा रही थी। ऐसे समय में बदायूँ के कलकृर साहब अपने किसी योरपियन मित्र को साथ लिये शिकार की तलाश में गङ्गा-तीर पर फिर रहे थे। अचानक उनकी दृष्टि उस स्थान पर जा पड़ी जहाँ स्वामीजी महाराज योगाभ्यास कर रहे थे। वे उनके निकट जा पहुँचे। चाँदी के सफ़ेद सिंहासन पर जैसे सोने की मूर्ति धरी हो, उसी प्रकार स्वामीजी महाराज के चमकते दमकते शरीर को उन्होंने सफ़ेद रेत पर बैठे देखा। वे देर तक आश्चर्य के साथ संन्यासी के सुन्दर रूप को देखते रहे। अन्त को जब महाराज ने आँखें खोलीं तो कलेकृर महोदय ने नमस्कार किया। चलते समय उन्होंने स्वामीजी से कहा कि हमें बड़ा आश्चर्य है कि इतनी सरदी पड़ रही है; नदी का किनारा है; रात का समय है, और आप बर्फ़ के समान ठंढी रेत पर एक

लँगोट-मात्र पहने मग्न बैठे हैं। क्या आपको जाड़ा नहीं लगता ?

स्वामीजी उत्तर देना ही चाहते थे कि कलेक्टर साहब का पादरी साथी बीच में बोल उठा—"ख़ूब मोटा-ताज़ा मनुष्य है। खाने को अच्छे माल मिलते होंगे। इसे जाड़ा क्या करेगा ?"

स्वामीजी ने हँस कर कहा—"हम दाल चपाती खाने-वाले क्या माल खायँगे। आप अंडा-मुरग़ी आदि गरम चीज़ें खाते हैं। आइए, अपने कोट और पोस्तीनें उतार कर मेरे साथ नंगे बैठिए।"

इस पर वह पादरी शरमिन्दा होगया।

[३]

स्वामीजी महाराज की आध्यात्मिक शक्तियों को देखकर इनके प्रेमी जन दंग रह जाया करते थे। एक दिन प्रयाग में राय बहादुर पण्डित सुन्दरलाल अपने मित्रों को लेकर स्वामीजी के पास गये। महाराज उस समय ध्यान में मग्न थे। इस-लिए वे सब चुपचाप बैठे रहे। कोई आध घंटे के बाद महाराज भीतर से बाहर आये। उन सब सज्जनों ने झुक कर प्रणाम किया। इस समय स्वामीजी आप ही आप हँस रहे थे। पण्डित सुन्दर-लालजी ने पूछा—"आप किस बात पर हँस रहे हैं ?"

महाराज ने उत्तर दिया—"एक मनुष्य मेरी ओर आ रहा है। आप कुछ देर यहाँ ठहरिए। उसके आने पर आपको एक तमाशा दिखाई देगा।"

इस बात के आध घड़ी बाद एक ब्राह्मण मिठाई लिये आ पहुँचा। उसने स्वामीजी को 'नमो नारायण!' करके मिठाई भेंट की और कहा—"इसमें से थोड़ा सा भोग लगाइए।"

स्वामीजी ने उससे कहा—"लो, थोड़ी सी मिठाई तुम भी खाओ।" किन्तु उसने न ली। तब महाराज ने उसे डाँट कर कहा—लेते क्यों नहीं हो? वह काँपने लगा, परन्तु मिठाई फिर भी न ली। तब स्वामीजी ने कहा—यह मनुष्य हमारे लिए मिठाई में विष मिला कर लाया है।

पण्डित सुन्दरलालजी उसके लिए पुलिस बुलवाने लगे। परन्तु महाराज ने कहा—देखो, यह अपने पाप के कारण कितना काँप रहा है। इसे पर्याप्त दण्ड मिल गया है। इसलिए पुलिस न बुलवाइए। स्वामीजी ने उस ब्राह्मण को उपदेश करके विदा कर दिया। राय साहब ने थोड़ी सी मिठाई कुत्ते को डाली। वह खाते ही छटपटा कर मर गया।

[४]

उदयपुर की बात है। एक दिन राना सज्जनसिंहजी और स्वामीजी के शिष्य सहजानन्दजी आदि कई सज्जन महा-

राज के पास बैठे थे। महाराज ने श्रीरानाजी से कहा—पण्डित सुन्दरलालजी यहाँ आ रहे हैं। यदि पहले सूचना दे देते तो उनके लिए सवारी का उचित प्रबंध कर दिया जाता।

रानाजी ने निवेदन किया—भगवन्, अब भी गाड़ी भेजी जा सकती है। इस पर स्वामीजी ने कहा—अब तो वे बैल गाड़ी में आ रहे हैं। गाड़ी का एक बैल सफेद और दूसरा चितकबरा है। वे कल यहाँ पहुँच जायँगे।

महाराज का कहना अगले दिन बिलकुल ठीक निकला।

[५]

मेरठ की बात है। स्वामीजी महाराज बाबू छेदीलालजी गुमाश्ता कमसरेट के बँगले में ठहरे हुए थे। वहाँ थियासोफी के प्रसिद्ध कार्यकर्त्ता कर्नल अलकाट और मैडम ब्लेवट्स्की आदि भी बैठी हुई थीं। बात-चीत में कर्नल अलकाट ने स्वामीजी से पूछा कि महाराज, सुना जाता है कि स्वामी शङ्क-राचार्यजी अपनी आत्मा को अपने शरीर से निकाल कर दूसरे के शरीर में डाल देते थे।

स्वामीजी ने कहा—इतना तो हम भी कर सकते हैं कि सारे शरीर से सारी प्राण-शक्ति को निकाल कर शरीर के किसी एक अंग में इकट्ठा कर दें और उस विशेष अंग के

सिवा बाकी सारा शरीर मुर्दा मालूम हो। आपने यह भी कहा कि यद्यपि हमें अभ्यास छोड़े बहुत दिन होगये हैं, तो भी जब कहो यह ऊपर कही क्रिया करके दिखला सकते हैं।

इस समय महाराज ने एक बात और भी कही। आपने कहा, मैंने केवल अपनी ही मुक्ति और उद्धार के लिए यत्न करने की अपेक्षा दूसरों को दुःखों से छूटने में सहायता देना और उनको सच्चा मार्ग दिखाना अधिक अच्छा समझ कर ही अभ्यास छोड़ दिया है। यदि मैं इतना कर सकता हूँ तो फिर एक शरीर से आत्मा को खेंच कर दूसरे शरीर में ले जाने के लिए केवल एक ही पग आगे बढ़ाने की आवश्यकता है। इसलिए यह असम्भव नहीं। बाकी रही यह बात कि शङ्कराचार्य ने ऐसा किया था या नहीं, इसका संबंध इतिहास से है। मैं व्यक्तिगतरूप से इस संबंध में कुछ नहीं जानता।

[६]

एक समय की बात है, अहमदगढ़ के पंडित कमलनयन और अलीगढ़ के पण्डित सुखदेव पन्द्रह दूसरे पण्डितों को साथ लेकर स्वामीजी के पास आये। उन्होंने पूछने के लिए थोड़े से बहुत कठिन प्रश्न सोच रक्खे थे। जिस समय वे

स्वामीजी के आसन पर पहुँचे उस समय स्वामीजी गङ्गा पर गये हुए थे। थोड़ी देर प्रतीक्षा करने के बाद स्वामीजी आते दिखाई दिये। सबने उठकर प्रणाम किया। महाराज कुशा के आसन पर बैठ कर कुछ देर तक चुपचाप ध्यान में मग्न रहे। फिर आँखें खोल कर सबकी ओर देखा और उपदेश देने लगे। महाराज के चौड़े माथे, मनोहर चेहरे, तेजस्वी रूप और मीठी वाणी का पण्डित-मंडली पर ऐसा असर पड़ा कि स्वामीजी के बार बार कहने पर भी कि कुछ पूछना हो तो पूछिए, वे कुछ न बोल सके। वे मूर्त्ति की तरह बैठे हुए यही कहते रहे कि जो कुछ आप कहते हैं सब ठीक है।

नवाँ परिच्छेद

निडर संन्यासी

जिसे परमेश्वर का भरोसा है, जो सच्चा है, जो सबकी भलाई चाहता है, जो ब्रह्मचारी है, जिसने मौत को जीत लिया है उसे किसका डर है? वह संसार में निर्भय होकर विचरता है। दयानन्द पूर्ण ब्रह्मचारी, सच्चे संन्यासी और जगत् की भलाई चाहनेवाले महात्मा थे। उनका जगदीश्वर पर अटल विश्वास था। इसलिए वे निडर थे।

[१]

संवत् १९२९ विक्रमी की बात है। आश्विन सुदी १ को स्वामीजी महाराज पटने से मुँगेर जा रहे थे। गाड़ी रात के बारह बजे जमालपुर स्टेशन पर पहुँची। उस समय मुँगेर को जानेवाली गाड़ी के छूटने में एक घंटा बाक़ी था। स्वामीजी स्टेशन के प्लेटफार्म पर टहलने लगे। उस समय एक अँगरेज़ इंजीनियर भी अपनी स्त्री-सहित उसी गाड़ी में सवार होने के लिए वहाँ खड़ा था। इंजीनियर की मेम ने केवल एक लँगोट

पहरे हुए नङ्ग-धड़ंग संन्यासी को वहाँ टहलता देख बुरा माना। उसने अपने पति से कहा। पति ने स्टेशनमास्टर से कहा कि इस साधु को यहाँ से हटा दो।

अँगरेज़ प्रभु की आज्ञा पाकर स्टेशनमास्टर ने श्रीस्वामीजी के पास जाकर प्रार्थना की कि भगवन्, मैं दूसरी ओर कुरसी बिछा देता हूँ। आप वहाँ आराम कीजिए। गाड़ी के छूटने में अभी बहुत देर है।

स्वामीजी सब बात पहले ही भाँप गये थे। उन्होंने स्टेशन-मास्टर से कहा कि जिस साहब ने आपको मेरे पास भेजा है, जाओ, उसे जाकर कह दो कि हम उस युग के मनुष्य हैं जब तुम्हारे बाबा आदम और माता हव्वा अदन के बाग़ में नङ्ग-धड़ङ्ग फिरने में लज्जा नहीं समझते थे।

इतना कह कर स्वामीजी फिर पहले ही की तरह टहलते रहे। इस पर इंजीनियर ने स्टेशन मास्टर को बुला कर दुबारा कहा। स्टेशनमास्टर ने उससे कहा—महाशय, वह कोई भिख-मँगा फक़ीर नहीं, जिसे मैं निकाल दूँ। वह एक स्वतंत्र संन्यासी है। वह मुझ और आप जैसों की कुछ भी परवाह नहीं करता।

तब इंजीनियर ने महाराज का शुभ नाम पूछा। स्टेशन-मास्टर ने कहा, ये स्वामी दयानन्द सरस्वती हैं। इस पर इंजीनियर ने चौंक कर कहा—Is he the great Dayanand?

"क्या महान् सुधारक दयानन्द आप ही हैं" ? तब वे बड़े भक्तिभाव के साथ महाराज के पास गये और उन्होंने नम्रता-पूर्वक नमस्कार करके कहा—"चिर काल से मेरे मन में महाराज के दर्शनों की अभिलाषा थी। यह मेरे बड़े सौभाग्य की बात है कि आज यहाँ दर्शन होगये।"

जितनी देर मुँगेर की गाड़ी खड़ी रही, इंजीनियर महाशय महाराज से बात-चीत करते रहे।

[२]

स्वामीजी महाराज बरेली में व्याख्यान दे रहे थे। वे पुराणों की गप्पों का खण्डन करते थे। उनको सुनकर पादरी, कलेक्टर और कमिश्नर ख़ूब हँसते थे। थोड़ी देर बाद स्वामीजी ने कहा—यह तो है पौराणिकों की लीला। अब किरानियों की सुनिए। ये लोग ऐसे हैं कि काँरी के पुत्र होना बताते हैं और उसका दोष सर्वज्ञ और परम पवित्र परमेश्वर पर लगाते हैं। ऐसा बुरा काम करते उन्हें लज्जा नहीं होती।

यह सुनकर कमिश्नर साहब का मुखमण्डल क्रोध से तमतमा उठा। स्वामीजी उसी जोश से व्याख्यान देते रहे।

स्वामीजी लाला लक्ष्मीनारायण की कोठी पर ठहरे हुए थे। अगले दिन कमिश्नर ने लालाजी को बुलाकर कहा कि

आप पण्डितजी से कह दीजिए कि खण्डन में अधिक कठोरता से न काम लिया करें। हम ईसाई लोग तो सुशिक्षित और सभ्य हैं। वाद-विवाद में नहीं घबराते। यदि हिन्दू या मुसलमान भड़क उठे तो इनके व्याख्यान बंद हो जायँगे।

लाला लक्ष्मीनारायण स्वामीजी तक यह संदेश पहुँचाते डरते थे। और भी किसी को साहस न होता था। अन्त को एक नास्तिक ने इस काम को करने का बीड़ा उठाया। परन्तु जब वह स्वामीजी के सामने गया तो उस पर महाराज के तेजस्वी मुखमंडल का इतना प्रभाव पड़ा कि वह केवल इतने ही शब्द कह सका—"कमिश्नर महोदय ने लालाजी को बुलाया था। इसलिए वे कुछ निवेदन करना चाहते हैं।"

लाला लक्ष्मीनारायण ने जब देखा कि अन्त को मुझ पर ही पाँसा पड़ा है तब वे बहुत घबराये। फिर खाँसते-खखारते हुए रुक रुककर बोले—"महाराज, यदि नरमी से काम लिया जाय तो बहुत अच्छा हो। इससे जनता पर असर भी अच्छा पड़ेगा और अँगरेज़ भी प्रसन्न रहेंगे।"

यह सुनकर स्वामीजी हँस पड़े और कहने लगे—"इतनी सी बात पर ही आप गिड़गिड़ा रहे थे! कमिश्नर साहब ने यही कहा है न कि आपका पंडित कड़ा खण्डन करता है।

उसके व्याख्यान बन्द हो जायँगे? भाई, मैं कोई हौआ तो नहीं था, जिससे आप इतना डरते रहे।"

उसी समय एक विश्वासी जन बोल उठा—"स्वामीजी तो सिद्ध पुरुष हैं। मन की बात जान लेते हैं।"

अगले दिन आत्मा के स्वरूप पर व्याख्यान था। पण्डाल सुननेवालों से खचाखच भरा हुआ था। पादरी स्काट के सिवा पहले दिनवाले बाक़ी सब योरुपियन उपस्थित थे। महाराज ने आत्मा का स्वरूप वर्णन करते हुए 'सचाई' पर कहना शुरू कर दिया। आपने गम्भीर भाव से गरज कर कहा—"लोग कहते हैं कि सत्य का प्रकाश मत करो, क्योंकि कलेक्टर ख़फ़ा हो जायगा, कमिश्नर प्रसन्न नहीं रहेगा, गवर्नर पीड़ा देगा। अजी, चाहे संसार का चक्रवर्ती राजा भी क्यों न रुष्ट हो जाय, हम तो सत्य ही कहेंगे।"

इसके बाद उपनिषदों के कुछ वचन बोल कर कहा—"आत्मा अमर है। इसको न कोई शस्त्र काट सकता है और न आग जला सकती है। वह एक ऐसी वस्तु है जो न कभी बूढ़ी होती है और न कभी मरती है। उसका नाश कभी नहीं होता। शरीर अवश्य नष्ट होनेवाली चीज़ है। जिसका जी चाहे इसे नष्ट कर दे। परन्तु हम शरीर को बचाने के लिए सच्चे धर्म्म को नहीं छोड़ेंगे। सचाई का त्याग नहीं करेंगे।"

स्वामी दयानन्द और मगरमच्छ ।—पृ० ४७

तब महाराज अपने चमकते हुए नेत्रों से चारों ओर दृष्टि डाल कर बोले—"वह वीर पुरुष मुझे दिखाइए जो मेरी आत्मा को टुकड़े टुकड़े कर डालने का अभिमान करता हो। जब तक ऐसा मनुष्य दिखाई नहीं पड़ता दयानन्द के लिए सत्य में संदेह करना स्वप्न में भी असम्भव है।"

महाराज की इस गरज से सारा पण्डाल गूँज उठा। सब ओर से उन्हीं की गूँज उठने लगी। सारी सभा पर सन्नाटा छा गया। स्वामीजी ने लेक्चर समाप्त भी कर दिया, परन्तु लोगों के कानों में उसकी ध्वनि बराबर गूँजती रही।

[३]

एक दिन स्वामीजी महाराज गङ्गा के तट पर लेटे हुए थे। उनका आधा शरीर जल के भीतर था और आधा बाहर। इतने में एक मगरमच्छ पास ही निकल आया। लोगों ने डर के मारे शोर मचाया। स्वामीजी वैसे ही लेटे रहे और बोले—"जब हम इसे कुछ नहीं कहते तो यह हमें क्यों छेड़ेगा" ?

[४]

मिर्ज़ापुर की बात है। श्रीस्वामीजी महाराज एक पगडंडी पर जा रहे थे। सामने एक बड़ा लम्बा-चौड़ा साँड़ आ गया। उसे देख स्वामीजी के सभी साथी डर कर इधर-उधर भाग

गये। परन्तु स्वामीजी वहीं छाती ताने डट कर खड़े रहे। जब साँड़ की आँखें महाराज की आँखों के साथ चार हुईं, वह अपने आप एक ओर को भाग गया।

एक साथी ने पूछा—महाराज, यदि साँड़ आपके सींग मारता ?

स्वामीजी ने उत्तर दिया—मैं उसे पकड़ कर पीछे ढकेल देता।

दसवाँ परिच्छेद

दयालु दयानन्द की दया

[१]

प्रयाग की बात है। स्वामीजी गङ्गा-तट पर बैठे प्रकृति का दृश्य देख रहे थे। उस समय उनके सामने एक स्त्री मरा हुआ बच्चा हाथों पर उठाये गङ्गा में घुस गई। कुछ गहरे पानी में जाकर उसने बालक के शरीर पर लपेटा हुआ कपड़ा उतार लिया और उसकी लोथ को हाय, हाय करते हुए पानी में बहा दिया।

यह देख महाराज के हृदय पर बड़ी चोट लगी। वे अपने को सँभाल न सके। उन्होंने देखा कि वह स्त्री कफ़न को धो कर हवा में सुखाती और रोती हुई घर को जा रही है। स्वामीजी ने मन ही मन कहा कि हा! यह भारत इतना कङ्गाल होगया कि माता अपने कलेजे के टुकड़े को तो नदी में बहा चली है, परन्तु कफ़न को उसने इसलिए नहीं बहाया कि कपड़े का मिलना कठिन है। अब तक महाराज केवल संस्कृत ही बोला करते थे। परन्तु अब उन्होंने प्रण कर लिया

कि कुछ काल तक इन्हीं लोगों की भाषा में प्रचार करके इनके दुःखों को दूर करने का उपाय ढूँढ़ूँगा।

[२]

लखनऊ की बात है। महाराज व्याख्यान देकर अपने आसन को आ रहे थे। रास्ते में एक बहुत दुबली-पतली और भूखों से अध-मुई भिखारिन मिली। उसके शरीर पर चिथड़े लटक रहे थे। महाराज को आते देख वह रोकर बोली—"बाबा, मैं कई दिनों की भूखी अनाथा हूँ। मुझे रोटी-कपड़ा देनेवाला कोई भी नहीं है। भगवान् तेरा भला करेगा। आज की रोटी तो दिला दे।"

उस बुढ़िया का रोना सुनकर स्वामीजी ठहर गये। उसका दुःख देखकर उनका हृदय पिघल गया। उनके नेत्रों से टप टप आँसू बरसने लगे। वे अपने साथियों से बोले—"कभी वह भी समय था जब यह भारत सुवर्ण-भूमि था। यहाँ दूध और दही की नहरें बहती थीं। पशु-पक्षी तक को भूख का कष्ट न सहना पड़ता था। परन्तु आज वह दिन आ गया है कि मारे भूख के इस बुढ़िया को इतनी भी समझ नहीं रही कि जिससे मैं माँग रही हूँ वह तो आप दूसरों से माँग कर निर्वाह करता है।"

महाराज ने इस बुढ़िया को काफ़ी अन्न दिला दिया।
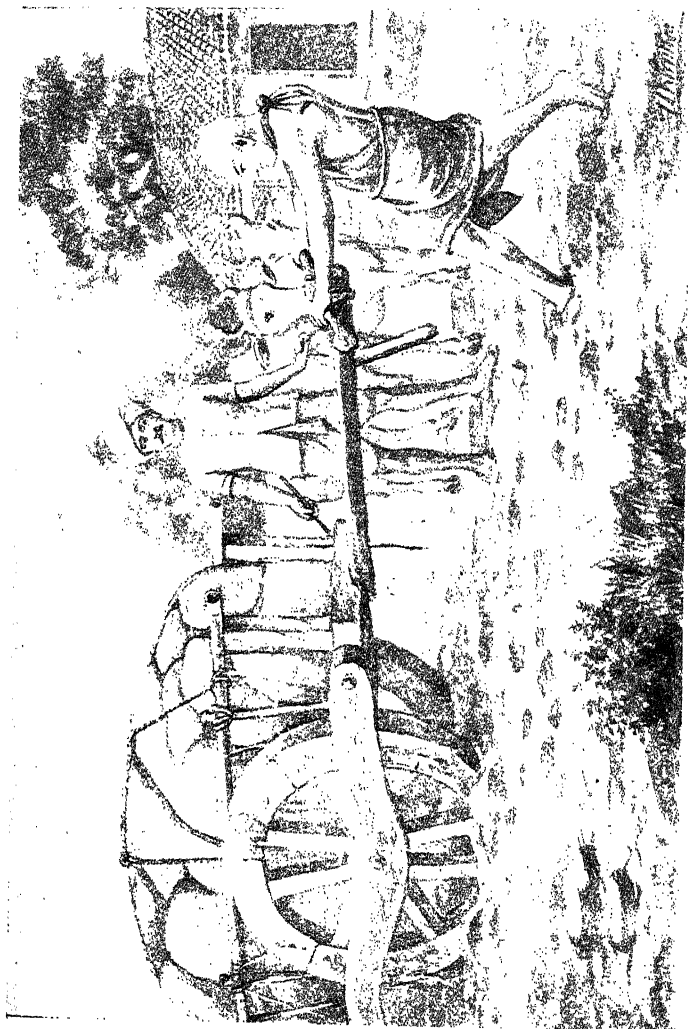
दयालु दयानन्द की दया।—पृ० ६१

[३]

विद्या, ब्रह्मचर्य और तपोबल के कारण स्वामीजी महाराज का सब कहीं आदर और मान था। बड़े बड़े लोग आपके भक्त थे। सहस्रों नर-नारी आपके लिए पूजा-भाव रखते थे। काशी की बात है। एक दिन महाराज बाहर घूमने जा रहे थे। एक जगह आपने देखा कि भारी बोझ से लदा हुआ एक छकड़ा कीचड़ में फँसा पड़ा है। छकड़ेवाला बैलों पर तड़ातड़ डंडा बरसा रहा है। पर वे बेचारे उस भारी बोझ को बाहर नहीं निकाल सकते। महाराज को बैलों पर बड़ी दया आई। वे झट कपड़े उतार कर कीचड़ में घुस गये। जाते ही उन्होंने बैलों को खोल कर बाहर कर दिया। फिर उस छकड़े को ज़ोर से खींच कर कीचड़ से बाहर ले आये। जिस बोझ को दो बैल न खींच सके थे उसे एक ब्रह्मचारी ने अपनी भुजाओं के बल से खींच लिया।

और कोई होता तो अपने बड़प्पन में ही रहता। इतना बड़ा आदमी होकर वह कभी इस प्रकार दलदल में फँसे हुए छकड़े को निकालने का यत्न न करता। परन्तु दयानन्द दया के अवतार थे। इसी लिए तो वे सच्चे महापुरुष थे।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

समदर्शी संन्यासी

स्वामीजी के समय में हिन्दुओं में छूत-छात और ऊँच-नीच का भाव बहुत अधिक था। स्त्री और शूद्र को विद्या पढ़ने का अधिकार न था। स्वामीजी जन्म के कारण किसी को ऊँच या नीच नहीं मानते थे। उनकी दृष्टि में मनुष्य अपने अच्छे और बुरे कामों से ही ऊँचा या नीचा था।

[१]

अनूपशहर में स्वामीजी उपदेश कर रहे थे। उमेदा नाम का नाई महाराज के लिए भोजन का थाल लाया। स्वामाजी वहीं बैठे बैठे उसे खाने लगे। वहाँ कुछ ब्राह्मण भी बैठे थे। वे चिल्ला उठे--एं, यह क्या कर रहे हो? यह तो नाई है! यह भ्रष्ट है। इसके हाथ का भोजन संन्यासी को नहीं खाना चाहिए।

स्वामीजी ने हँसकर कहा--रोटी तो गेहूँ की है। यह भी साफ़-सुथरा है। रोटी के साथ नाई होने का क्या संबंध? भोजन पवित्र होना चाहिए। फिर वह चाहे किसी के भी हाथ का हो, उसके खाने में कोई हानि नहीं।

[२]

रुड़की में स्वामीजी व्याख्यान दे रहे थे। एक मज़हबी भी वहाँ आकर एक जगह बैठ गया और उपदेश सुनने लगा। मज़हबी लोग अछूत समझे जाते हैं। किसी हिन्दू ने उसे बैठा देख दुत्कार कर कहा—तू नीच होकर ऊँची जगह बैठा है! उठ यहाँ से। वह बेचारा वहाँ से उठ कर दूसरी जगह जा बैठा। पर वहाँ से भी जन्माभिमानी लोगों ने उसे उठा दिया।

जब स्वामीजी को पता लगा तो उन्होंने उनको डाँटकर कहा कि इस भक्त को उपदेश सुनने दो। जैसे सूर्य का प्रकाश, मेघों की वर्षा और वसन्त का वायु सबका है, किसी एक की जागीर नहीं, वैसे ही वेद का ज्ञान सबका है। सब उसको सुन सकते हैं।

[३]

बम्बई की बात है। एक बंगाली महाशय स्वामीजी से बातचीत करने आये। कुछ देर बाद उन्होंने पीने के लिए पानी माँगा। उनकी लबी दाढ़ी देखकर स्वामीजी के प्रेमियों ने उन्हें मुसलमान समझा। उन्होंने उनको दोने में पानी

दिया। इस पर स्वामीजी ने उन्हें डाँटा और कहा—"कोई किसी भी जाति का क्यों न हो उसका इस प्रकार निरादर करना ठीक नहीं। गिलास देने से क्या उसमें विष लग जाता? ऐसी ही करतूतों से इस आर्य जाति ने लाखों खोये, परन्तु पाया एक भी नहीं।

बारहवाँ परिच्छेद

दुष्टों की दुष्टता

[१]

श्रीयुत महादेव गोविन्द रानडे पूना में जज थे। उनकी प्रार्थना पर आषाढ़वदी १३ संवत् १९३२ को स्वामीजी पूना पधारे। यहाँ आपके अत्यन्त विद्वत्ता-पूर्ण पन्द्रह व्याख्यान हुए। सारे नगर में धूम मच गई। स्थान स्थान पर उनकी चर्चा होने लगी। अन्तिम व्याख्यान के बाद सायंकाल स्वामीजी का बड़ा भारी जुलूस निकाला गया। महाराज के गले में फूलों की माला पहनाई गई। एक पालकी में वेद रक्खे गये। स्वामीजी को एक सजे हुए हाथी पर सवार कराया गया। बड़ी धूम-धाम से नगर-कीर्त्तन हुआ।

उधर धूर्तों ने भी एक मनुष्य का मुँह काला करके स्वामीजी का स्वाँग बनाया और उसे गधे पर सवार करा कर बाज़ार में घूमने लगे। वे महाराज को गंदी गालियाँ देते थे, उन पर कीचड़ और रोड़े फेंकते थे, और हुल्लड़ मचाते थे। रानडे महाशय उनको पुलिस के हवाले करना चाहते थे, परन्तु स्वामीजी ने उन्हें मना कर दिया।

[२]

स्वामीजी वैदिक धर्म्म का प्रचार करते हुए जब वज़ीराबाद पहुँचे तो उनका आना सुनकर वहाँ के अच्छे अच्छे पण्डित नगर छोड़कर दूसरी जगह भाग गये। उन दिनों वज़ीराबाद में वासुदेव नाम का एक मोटा-ताज़ा पण्डित आया हुआ था। वह शक्ति के माननेवालों की तरह लंबे लंबे केश रखता था। लोग उसे सौ रुपया देने का लालच दिखाकर स्वामीजी के सामने शास्त्रार्थ के लिए ले आये।

वासुदेव ने एक श्लोक पढ़कर कहा कि देखिए इस वेद-मंत्र में शालिग्राम और तुलसी की पूजा कही है। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि यह तो वेद-मंत्र ही नहीं। वेद का नाम झूठ-मूठ लेकर क्यों अनर्थ कर रहे हो? वासुदेव कुछ भी उत्तर न दे सका। तब दुष्ट लोग शरारत करने पर उतर आये। एक छोकरे ने सीटी बजाना शुरू कर दिया। आर्यसमाज के प्रधान ने उसे ऐसा करने से रोका। बस फिर क्या था, शरारती लोग स्वामीजी पर टूट पड़े। स्वामीजी ज्यों-त्यों करके, अपनी पुस्तकें आदि उठा, अपने डेरे पर आगये। परन्तु दुष्टों ने उनका पीछा न छोड़ा। वे उन पर ईंटों और रोड़ों की वर्षा करने लगे। स्वामीजी ने दरवाज़ा बंद कर लिया और उन मूर्खों की दुष्टता पर हँसते रहे।

स्वामीजी तो डेरे पर आगये; पर उनका एक नौकर बाहर रह गया। बदमाशों ने उसे पकड़ लिया और बहुत पीटा। जब स्वामीजी को इसका पता लगा तो वे बाहर निकले। निकलते ही वे शेर की तरह इतने ज़ोर से गरजे कि सभी उपद्रवी लोग, स्वामीजी के नौकर को छोड़कर, एक-दम भाग गये।

तेरहवाँ परिच्छेद

स्वामीजी की दिन-चर्या

स्वामीजी सवेरे तीन बजे उठते थे। कुल्ला आदि करके जल-पान करते थे। शौच आदि से निवृत्त होकर योग के आसन करते थे। इन नाना प्रकार के आसनों से ही उनका व्यायाम हो जाता था। जिस समय वे कुम्भक प्राणायाम करते थे, उस समय उनकी मूर्त्ति तपे हुए सोने के सदृश चमका करती थी।

सूर्य निकलने से पहले ही वे बाहर घूमने निकल जाते थे। वे इतना तेज़ चलते थे कि उनके साथ चलनेवाले को दौड़ना पड़ता था। वे साँस सदा नाक द्वारा लेते थे। दूर एकान्त स्थान में जाकर एक घंटा तक समाधि लगाते थे। फिर आठ बजे अपने स्थान पर लौट आते थे। बाहर से आते ही अपने पाँव झाड़ते थे।

इसके बाद स्वामीजी बीस मिनट तक लेटकर विश्राम लेते थे। इस समय आपका शरीर बिलकुल ढीला हो जाता था। वह बिलकुल हिलता-डुलता न था। विश्राम के बाद सेर भर दूध पीते थे। फिर काम शुरू कर देते थे और ग्यारह बजे तक लगातार काम करते रहते थे।
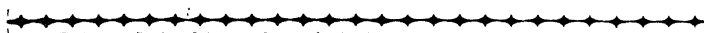
स्वामीजी भोजन के पहले स्नान किया करते थे। काम से उठ कर वे स्नान करते और फिर भोजन खाते थे। वे दो तोले घी और आठ छोटी छोटी चपातियाँ खाते थे। वे रोटी खूब चबाकर खाते और भोजन में कोई आध घंटा लगाते थे। उसी समय समाचार-पत्र भी सुन लिया करते थे।

भोजन के बाद कोई दस बारह मिनट बायें कर्वट के बल लेटकर आराम करते; और फिर उठकर साँझ के चार बजे तक काम करते। ठीक चार बजे मिलने-जुलनेवाले आते। रात के दस बजे तक प्रश्नोत्तर और शङ्का-समाधान होता रहता। ठीक दस बजे महाराज सो जाते। आपका बिछौना सादा परन्तु साफ़ होता था। नींद इतनी उनके वश में थी कि खाट पर लेटते ही आँख लग जाती थी।

—

चौदहवाँ परिच्छेद

निर्लोभ महात्मा

धन-दौलत का लोभ बड़ा प्रबल है। रुपये के लालच में फँसकर मनुष्य सच-झूठ की कुछ परवा नहीं करता। वह लक्ष्मी की झङ्कार सुनकर अपने सारे सत्य सिद्धान्त छोड़ देने को तैयार हो जाता है। माया का मोह बड़ा प्रबल है। परन्तु दयानन्द ने काम, क्रोध और लोभ-मोह सबको जीत लिया था। कोई भी लालच उनको सत्य से न डिगा सकता था।

एक समय की बात है, स्वामीजी महाराज कुछ दिन से उदयपुर में ठहरे हुए थे। राणा सज्जनसिंहजी की महाराज के प्रति बड़ी भक्ति थी। वे रोज़ सबेरे आकर महाराज का उपदेश सुना करते थे। एक दिन स्वामीजी अकेले बैठे थे। उसी समय श्रीराणाजी पधारे और नम्रता के साथ कहने लगे—"भगवन्, वैसे तो उदयपुर का सारा राज्य एकलिङ्ग महादेव के मन्दिर को दान दिया हुआ है, परन्तु राज्य का जितना भाग उस मन्दिर के साथ लगा हुआ है उसकी आमदनी भी कई लाख है। यदि आप मूर्त्ति-पूजा का खण्डन छोड़ दें तो इस मन्दिर की गद्दी आपकी हो जायगी। आप इतनी बड़ी जायदाद के

मालिक हो जायँगे। इसके सिवा राजगुरु भी आप ही होंगे।"

राणा के ये शब्द सुन स्वामीजी झुँझला कर बोले—"आप मुझे लालच दिखाकर सचाई से हटाना चाहते हैं! ईश्वर की आज्ञा का भङ्ग कराना चाहते हैं! आपके राज्य से तो मैं एक दौड़ लगाकर बाहर जा सकता हूँ। परन्तु जगदीश्वर के राज्य को छोड़कर कहाँ जाऊँ? लाखों लोग मेरे भरोसे ही मूर्त्ति-पूजा को वेद-विरुद्ध मानते हैं। मुझे ऐसे शब्द कहने का साहस फिर कभी न कीजिए। संसार की कोई भी शक्ति मुझे भगवान् से परे नहीं ले जा सकती। मैं उस सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की आज्ञा मानूँ या आपकी?

राणा यह सुनकर चुप रह गये और थोड़ी देर बाद बोले—मैंने तो आपकी परीक्षा करने के लिए ही यह कहा था। आप धन्य हैं। आपको न लोभ गिरा सकता है और न भय।

[२]

स्वामीजी में स्त्री-जाति के प्रति संमान का भाव बहुत अधिक था। उन्होंने अपने किसी भी ग्रन्थ में कहीं भी स्त्रियों की निन्दा नहीं की। शङ्कर, सायन, माधव, रामानुज, तुलसीदास

और कबीर आदि जितने भी नवीन आचार्य हुए हैं वे सब स्त्री को शूद्र, दासी और नीच कहते हैं। वे उसे विद्या पढ़ने का अधिकारी नहीं मानते। स्त्री की जितनी निन्दा नवीन-वेदान्त के आचार्यों ने की है उतनी किसी दूसरे ने नहीं की।

परन्तु ऋषि दयानन्द स्त्री-जाति को पूर्ण स्वतंत्रता देने के पक्ष में थे। वे उन्हें वेद तक पढ़ने का अधिकार मानते थे। महाराज के मन में माताओं के लिए कितना संमान का भाव था, इसका पता आगे लिखी घटना से लगता है।

चित्तौड़ की बात है। एक दिन व्याख्यान के बाद अनेक पण्डितों के साथ स्वामीजी बाहर घूमने जा रहे थे। मूर्त्ति-पूजा पर ही बात-चीत हो रही थी। सामने गाँव का एक देवालय आ गया। उस समय वहाँ बहुत से छोटे छोटे बच्चे खेल रहे थे। स्वामीजी ने वहाँ अचानक सिर झुका दिया और फिर आगे चल पड़े।

एक साथी पण्डित ने कहा—स्वामीजी, मूर्त्ति-पूजा का खण्डन चाहे कितना करो, परन्तु देवताओं की शक्ति का प्रभाव प्रकट हुए बिना नहीं रहता। मन्दिर के सामने आपका सिर अपने आप झुक ही गया।

महाराज यह सुनते ही वहीं ठहर गये, और उन बच्चों में खेलती हुई एक चार बरस की नङ्ग-धड़ंग बालिका की ओर इशारा करके बोले—देखते नहीं हो, यह मातृ-शक्ति है, जिसने हम सबको उत्पन्न किया है! यह सुनते ही सब पर सन्नाटा छा गया।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

काशी पर चढ़ाई

काशी हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थ है। वह मूर्त्ति-पूजा का गढ़ है। वहाँ बड़े बड़े पौराणिक पण्डित रहते हैं। जब दूसरे नगरों के पण्डित शास्त्रार्थ में स्वामीजी के सामने न ठहर सके तो उन्होंने काशी के पण्डितों का लिखा हुआ व्यवस्था-पत्र स्वामीजी को दिखलाया। उसमें लिखा था कि मूर्त्ति-पूजा, तिलक, कण्ठी, मृतक-श्राद्ध और ईश्वर का अवतार सब ठीक हैं। यह देख स्वामीजी को काशी के पण्डितों की विद्वत्ता का पता लग गया। आपने उनकी पोल खोलने का निश्चय कर लिया।

जिस काशी को महादेव के त्रिशूल पर ठहरी हुई कहा जाता है; जिसके पण्डितों की विद्वत्ता पर सारा मूर्त्ति-पूजक जगत् अभिमान करता है; जिसमें जितने "कङ्कर उतने शङ्कर" हैं; जिसके ऊँचे ऊँचे मन्दिर और शिवालय मूर्त्ति-पूजा की बड़ाई प्रकट कर रहे हैं, उसी काशीपुरी में एक लँगोट-बंद दिगम्बर संन्यासी हाथ में वैदिक धर्म्म का झण्डा लिये प्रविष्ट हुआ। जिस प्रकार भेड़ों के रेवड़ में सिंह की

गरज से घबराहट उत्पन्न हो जाती है, उसी प्रकार इस नर-सिंह के वेद-नाद को सुनकर काशी की पण्डित-मंडली में खलबली मच गई। काशी में सब जगह मशहूर होगया कि एक ऐसा संन्यासी आया है जो गङ्गा के प्रवाह की तरह संस्कृत बोलता है और मूर्त्ति-पूजा और अवतार-वाद का खण्डन करता है। सैकड़ों-सहस्रों लोग भगवान् दयानन्द के पवित्र उपदेशों को सुनने के लिए आने लगे।

स्वामीजी महाराज के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने का यत्न पण्डितों ने बहुतेरा किया। उनको गुप्त ईसाई, सरकार का भेदिया और नीच कुल में उत्पन्न हुआ कहकर बदनाम करने की बड़ी कोशिश की; परन्तु किसी प्रकार भी उनका काम सिद्ध न हुआ। अन्त को उन्हें स्वामीजी से शास्त्रार्थ करना ही पड़ा।

स्वामीजी तो यह चाहते ही थे। पण्डितों की ओर से बड़ी भारी तैयारी की गई। काशी के मूर्त्ति-पूजक राजा शास्त्रार्थ की सभा के प्रधान चुने गये। नियत दिन और नियत समय पर शास्त्रार्थ के स्थान पर लोग एक बहुत बड़ी संख्या में इकट्ठे होगये। एक ओर काशी की सारी पण्डित-मंडली बड़े ठाठ-बाट के साथ डटी बैठी थी। उनके साथ उनके सैकड़ों सहायक थे। और दूसरी ओर उनके सामने

केवल एक जगदीश्वर का सहारा रखनेवाला बाल-ब्रह्मचारी सचाई की ढाल हाथ में लिये अकेला बैठा था।

मूर्त्ति-पूजा पर शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। दोनों ओर से प्रश्न और उत्तर हुए। परन्तु वेद से मूर्त्ति-पूजा सिद्ध न हुई। पण्डित लोग समय टालने के लिए चालें सोचने लगे। साँझ हो चुकी थी। एक पण्डित ने दो फटे-पुराने पन्ने स्वामीजी के सामने रखकर कहा कि देखो ये वेद के पन्ने हैं। इनमें मूर्त्ति-पूजा की आज्ञा है।

स्वामीजी ने कहा कि पढ़कर सुनाइए। परन्तु वह कहने लगा कि नहीं, आप ही पढ़िए। स्वामीजी उन्हें देख ही रहे थे कि पण्डित-मंडली ने ताली पीट दी—बोल सनातनधर्म्म की जय! और सारी सभा उठ खड़ी हुई। धूर्त्त लोग दुष्टता करना चाहते थे परन्तु पुलिस ने रोक दिया। समझनेवाले समझ गये कि काशी के पण्डितों में कितनी पण्डिताई है। स्वामीजी इसके बाद कई दिन तक काशी में ठहरे रहे और बार बार शास्त्रार्थ के लिए पण्डितों को ललकारते रहे, परन्तु किसी को भी सामने आने का साहस न हुआ। होता भी कैसे? वे तो पहले ही मुश्किल से जान बचाकर आये थे।

सोलहवाँ परिच्छेद

हँसी में शिक्षा

हँस-मुख होना बड़े आदमियों का एक लक्षण है। महापुरुष जहाँ सदा आप प्रसन्न रहते हैं वहाँ अपने मिलनेवाले लोगों को भी प्रसन्न रखते हैं। हमारे स्वामीजी महाराज में भी यह गुण ख़ूब था। प्रश्नों का उत्तर देते समय वे कभी कभी ऐसी बात कह देते थे कि वह हँसी की हँसी और उत्तर का उत्तर हो जाता था। जो असर घंटा भर के व्याख्यान से पड़ना कठिन है वह उनकी एक दो शब्दों की बात से हो जाता था। प्रश्न करनेवाला महाराज के उत्तर को सुनकर चुप हो जाता था।

[१]

एक समय की बात है एक पण्डित स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने आया। स्वामीजी नीचे फ़र्श पर आसन बिछाये बैठे थे। वह बड़े घमण्ड से आकर एक ऊँचे चबूतरे पर बैठ गया। भक्तों को यह बात बहुत बुरी मालूम हुई। उन्होंने उसे बहुतेरा समझाया कि तुम भी नीचे आसन पर बैठ जाओ। परन्तु उसने एक न मानी।

तब स्वामीजी बोले, कोई हर्ज नहीं। पण्डितजी को वहीं बैठा रहने दो। ऊँची जगह पर बैठ जाने से ही कोई बड़ा नहीं हो जाता। यदि ऊँचे स्थान पर बैठने से ही पण्डितजी अपने को बड़ा समझते हैं तो कौआ जो पेड़ पर बैठा है वही पण्डितजी से बड़ा हुआ।

पण्डितजी शर्मिन्दा होगये।

[२]

लुधियाना में एक पण्डित शास्त्रार्थ के समय अपने साथियों से कहने लगा—चलो, यहाँ से उठ चलें। इस दुष्ट (स्वामीजी) का मुँह देखना पाप है।

इस पर स्वामीजी ने कहा—यदि मेरा मुँह देखने से आपको पाप लगने का डर है तो मेरे पीछे खड़े हो जाइए, परन्तु शास्त्रार्थ अवश्य कीजिए।

[३]

एक समय की बात है, स्वामीजी उपदेश दे रहे थे कि माथे पर टीका लगाना व्यर्थ है। एक ब्राह्मण बोला कि शरीर पर विभूति (राख) रमाने से स्वर्ग मिलता है।

यह सुनकर स्वामीजी बोले—तब तो गधा सबसे पहले स्वर्ग में जायगा, क्योंकि वह सारे दिन मिट्टी में लेटता है।

[४]

स्वामीजी एक बार थाल में भोजन कर रहे थे। उधर से एक संन्यासी (फ़क़ीर) आ निकला। वह स्वामीजी को देखकर कहने लगा कि आप संन्यासी होकर धातु के थाल में भोजन कर रहे हैं! संन्यासी के लिए तो धातु को छूना तक मना है।

स्वामीजी चुप रहे। परन्तु वह साधु फिर वही बात कहने लगा। जब स्वामीजी भोजन खा चुके तो उन्होंने उस साधु के उस्तरे से घुटे हुए सिर पर हाथ फेर कर कहा—क्या तुम्हारा सिर जूते से मूँड़ा गया था? वह साधु चुप रह गया।

[५]

एक पण्डित ने स्वामीजी के सामने मिसरी और रुपया रखकर कहा—महाराज, आप तो इस कलि-काल में साक्षात् विष्णु का अवतार हैं।

स्वामीजी—मैं तो पहले ही दस अवतारों को नहीं मानता, आप मुझे ग्यारहवाँ अवतार बनाना चाहते हैं।

इसके बाद पण्डितजी की बगल में दबाये हुए कथा के आसन की ओर संकेत करके स्वामीजी ने पूछा—यह क्या है?

पण्डितजी—खाने-कमाने की चक्की।

स्वामीजी—यदि चक्की ही चलाना है तो सत्य की चक्की चलाओ। खाने को अपने आप मिल जायगा।

[६]

कुछ लोगों ने सोचा कि स्वामीजी सबको निरुत्तर कर देते हैं, आज उन्हें निरुत्तर करना चाहिए। उन्होंने स्वामीजी से यह पूछने की ठानी कि आप ज्ञानी हैं या अज्ञानी? यदि स्वामीजी ने कहा, मैं ज्ञानी हूँ, तो हम कहेंगे कि आप अभिमानी हैं। और यदि कहा कि मैं अज्ञानी हूँ, तो हम कहेंगे कि आप स्वयं अज्ञानी हैं, दूसरों को क्या ज्ञान सिखा सकते हैं? यह सलाह करके वे स्वामीजी के पास गये और उन्होंने पूछा—

"महाराज, आप ज्ञानी हैं या अज्ञानी?"

स्वामीजी ने उत्तर दिया, मैं कई बातों में ज्ञानी हूँ और कई में अज्ञानी। जैसे वेद-शास्त्र आदि में ज्ञानी हूँ, परन्तु अरबी, फ़ारसी और अँगरेज़ी आदि भाषाओं में अज्ञानी।

वे लोग चुप रह गये।

[७]

एक सेठजी स्वामीजी से कहने लगे कि गङ्गा में स्नान करने से सब पाप धुल जाते हैं।

स्वामीजी ने हँस कर उत्तर दिया, तब तो मछलियाँ और मगर-मच्छ सब मुक्त हो जायँगे।

सेठ ने कहा—स्वामीजी, आप हँसी करते हैं।

स्वामीजी ने कहा—यदि गङ्गा-स्नान से पाप दूर हो जायँ तो जो लोग गङ्गा में बैठकर पाप करते हैं, कहिए, उनकी क्या गति होती होगी ?

सेठजी, चुप रह गये।

[८]

दिल्ली में एक मुसलमान स्वामीजी से कहने लगा—महाराज, आप हिन्दुओं की मूर्त्ति-पूजा का खण्डन करते हैं, यह बहुत अच्छा काम है। इस्लाम भी यही चाहता है।

स्वामीजी—हिन्दुओं ही की क्यों मैं तो सब मतों की मूर्त्तिपूजा का खण्डन करता हूँ। हिन्दुओं की मूर्त्तियाँ तो चार उँगली से लेकर एक हाथ तक ही लंबी होती हैं। इनको तो हटाया जा सकेगा। किन्तु मुसलमानों की मूर्त्तियाँ तीन-तल्ले मकानों से भी ऊँची होती हैं। प्रश्न यह है कि वे कैसे हटेंगी ?

[९]

खँडोली ग्राम का रहनेवाला चतुरसिंह जाट एक दिन स्वामीजी के पास आकर कहने लगा—स्वामीजी, आप चाहे

जो कहें, परन्तु यह दिखाई देनेवाला जगत् आकाश के फूल की तरह झूठा है, स्वप्न में देखी हुई चीज़ की भाँति भ्रम है, बाँझ स्त्री के पुत्र की तरह मन-गढ़ंत है। सच तो यह है कि यह है ही नहीं, केवल ब्रह्म ही ब्रह्म है।

चतुरसिंह की ये बातें सुनकर स्वामीजी ने उसके एक चपत जमा दी।

चतुरसिंह—महाराज, मत-भेद होने पर आप जैसे ज्ञानी पुरुषों को इस प्रकार थप्पड़ मारना शोभा नहीं देता।

स्वामीजी—चौधरीजी, जब आपके कथन के अनुसार सब ब्रह्म ही ब्रह्म है, और सब जगत् मिथ्या है, तब किसने थप्पड़ मारा और किसको मारा। जब ब्रह्म ही मारनेवाला और ब्रह्म ही खानेवाला है; मैं और आप मिथ्या हैं, तो मुझसे आपकी थप्पड़ की शिकायत क्यों?

चतुरसिंह—महाराज, आपने मेरी आँखें खोल दीं। सचमुच हम वेदान्तियों को कुछ ज्ञान नहीं, इसी कारण जगत् को झूठा कहते हैं।

[१०]

मुसलमानों के प्रसिद्ध नेता सर सैयद अहमदख़ाँ ने अग्नि-होत्र को अच्छा न समझते हुए पूछा कि थोड़े से घी से इतने बड़े वायु-मंडल की शुद्धि कैसे हो सकती है?

स्वामीजी ने उनसे पूछा—आपके यहाँ कितने मनुष्यों का भोजन बनता होगा ?

सर सैयद—कोई पचास-साठ का।

स्वामीजी—कितने सेर दाल पकती होगी ?

सर सैयद—लगभग छः सेर।

स्वामीजी—यह दाल कितनी हींग से छोंकी जाती होगी।

सर सैयद—कम से कम माशा भर से।

स्वामीजी—क्या इतनी थोड़ी सी हींग से सब दाल सुगंधित हो जाती है ?

सर सैयद—अवश्य।

स्वामीजी—इसी प्रकार थोड़ा सा भी किया हुआ हवन वायु को सुगंधित कर देता है।

सर सैयद अहमदख़ाँ ने स्वामीजी की प्रबल युक्ति के सामने सिर झुका दिया।

सत्रहवाँ परिच्छेद

दयानन्द-वचनामृत

महापुरुषों के वचन बड़े अमूल्य हुआ करते हैं। उन पर चलने से मनुष्य को बहुत सुख मिलता है और उसका लोक तथा परलोक दोनों सुधर जाते हैं। आगे हम स्वामीजी के ऐसे ही थोड़े से वचन देते हैं।

१—ईश्वर ने मनुष्य को जितनी शक्ति दे रक्खी है उतना पुरुषार्थ उसे अवश्य करना चाहिए। इसके बाद ईश्वर की सहायता की कामना करनी चाहिए।

२—ईश्वर की सहायता के बिना धर्म का पूरा ज्ञान और उसका पूर्ण अनुष्ठान कभी नहीं हो सकता।

३—जो मनुष्य सच्चे प्रेम और भक्तिभाव से भगवान् की उपासना करता है उस उपासक को अन्तर्यामी परमेश्वर मोक्ष का सुख देकर सदा के लिए आनन्द कर देता है।

४—जिन लोगों का मन विद्या में लगा रहता है, जो सदा सत्य बोलते हैं, जो अभिमान नहीं करते, जो सदा पवित्र रहते हैं; जो सत्य उपदेश और विद्यादान से संसारी लोगों का दुःख दूर करते हैं ऐसे परोपकारी नर-नारी धन्य हैं।

५—वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। उसका पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

६—दयानन्द की आँखें वह दिन देखना चाहती हैं जब काश्मीर से कन्याकुमारी तक और अटक से कटक तक देवनागरी अक्षरों का ही प्रचार होगा। मैंने भारत भर में एक भाषा का प्रचार करने के लिए ही अपने सारे ग्रन्थ आर्य-भाषा में बनाये हैं।

७—दूसरे की भलाई करना धर्म्म और दूसरे की हानि करना अधर्म्म है।

८—वेश्या के पास जानेवाले मनुष्य की बहू-बेटियों और लड़के-बालों का आचार ठीक नहीं रहता।

९—सब लोग विद्वान् तो नहीं बन सकते परन्तु धार्मिक अवश्य बन सकते हैं।

१०—जो मनुष्य सबके हृदय की बात को जाननेवाले और सब जगह मौजूद परमेश्वर से नहीं डरता, जो यह नहीं समझता कि मेरा कोई भी काम ईश्वर से छिपा नहीं; जो इन्द्रियों को वश में रखकर ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करता वह कभी धर्मात्मा नहीं बन सकता।

११—जो मनुष्य राजा आदि से तो डरता है परन्तु परमात्म-देव का भय नहीं मानता; जो प्रबलों से डरता और दुर्बलों को सताता है, वह कभी धर्मात्मा नहीं बन सकता।

१२—दान उसी को कहते हैं जो विद्या-प्रचार, कला-कौशल की उन्नति, और रोगियों तथा अनाथों की सेवा में लगाया जाय।

१३—सत्य से बड़ा और कोई धर्म का अंग नहीं।

१४—जो लोग समझते हैं कि झूठ से काम सिद्ध होते हैं वे अज्ञानी हैं।

१५—मनुष्य का यह परम कर्तव्य है कि वह वाणी और लेखनी द्वारा सत्य का प्रकाश और असत्य का नाश करे। ऐसा न करने से मनुष्यों की उन्नति नहीं हो सकती।

१६—मनुष्य-जन्म का यही फल है कि सच और झूठ का निर्णय किया और कराया जाय, न कि झगड़ा और वैर-विरोध बढ़ाया जाय।

१७—मेरा मतलब कोई नया मत चलाने का बिलकुल नहीं। मैं तो सचाई को ही मानना और मनवाना चाहता हूँ। यदि मैं भी पक्षपाती होता तो आर्यावर्त के किसी एक पंथ को लेकर उस पर हठ करने लग जाता। परन्तु मैं तो जैसे दूसरे देशों की बुरी बातों को बुरा समझता हूँ, वैसे ही भारतवर्ष के बुरे कामों को भी पसंद नहीं करता।

१८—मेरे विचार में सत्य बोलना, किसी को दुःख न देना, दया आदि शुभ गुण सब मतों में अच्छे हैं। बाक़ी लड़ाई-झगड़ा, ईर्ष्या-द्वेष, और झूठ बोलना आदि कर्म सब मतों में बुरे हैं।

१६—जो मनुष्य सत्य के पालन करने का पक्का इरादा कर लेता है, वही उत्तम गुणों को धारण करता है।

२०—पूजा के योग्य सबसे पहला देवता माता है। पुत्रों को चाहिए कि माता की टहल-सेवा तन-मन-धन से करें। उसे सब तरह से प्रसन्न करें। उसका अपमान कभी न करें। दूसरा देव पिता है। उसका भी पूजन माता के समान होना चाहिए। तीसरा देव विद्या पढ़ानेवाला गुरु है। चौथा देव वह अतिथि है जो विद्वान्, धार्मिक, सरल और सबकी भलाई करनेवाला हो; जो स्थान स्थान पर घूम कर सच्चे उपदेश से लोगों को सुख देने का प्रयत्न करे। ऐसे सन्त और सज्जन मनुष्य की सेवा करना बड़ा भारी पुण्य है। पाँचवाँ देव पति के लिए पत्नी और पत्नी के लिए पति है। परमेश्वर के पास पहुँचने की यही पाँच सीढ़ियाँ हैं।

२१—सज्जन, विद्वान्, धार्मिक और दूसरों की भलाई करनेवाले मनुष्य को सन्त कहते हैं। साधु उस मनुष्य को कहा जाता है जो धर्मी और उत्तम कर्म करनेवाला हो; जो सदा दूसरे

की भलाई में लगा रहे, विद्वान् और गुणवान् हो, और सच्चा उपदेश देकर लोगों का दुःख दूर करे।

२२—दान अच्छे आदमी को ही देना चाहिए।

२३—मनुष्य को चाहिए कि पहले अपने दोषों को देख-भाल कर निकाल दे, तब दूसरे के दोषों और दुर्गुणों पर दृष्टि डाले।

२४—मित्रों को एक दूसरे के साथ अपनी आत्मा और प्राणों के समान बर्ताव करना चाहिए। अपने पड़ोसियों को अपनी देह के तुल्य जानना चाहिए। मालिक नौकर के साथ ऐसा बर्ताव करे जैसा वह अपने अंगों के साथ करता है।

२५—कोई कितना ही करे, जो स्वदेशी राज्य होता है वह सबसे अच्छा होता है। मत-मतान्तर के झगड़े से दूर, अपने-पराये की रियाअत न करनेवाला, प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा करनेवाला, न्याय और दया से युक्त भी विदेशियों का राज्य क्यों न हो, तो भी वह पूर्ण सुखदायक नहीं हो सकता।

२६—यह आर्यावर्त देश ऐसा है कि भूगोल भर में इसके सदृश दूसरा देश दिखाई नहीं देता। इसी कारण भारत-भूमि का नाम स्वर्ण-भूमि है, क्योंकि यही भूमि स्वर्ण आदि रत्नों को उत्पन्न करती है। सृष्टि के आदि में, आर्य जन इसी लिए इसमें आकर बसे थे। भूगोल में जितने भी देश हैं, उनके जितने भी

निवासी हैं, वे सारे इसी देश की प्रशंसा करते हैं, इसी से आशा रखते हैं। यह आर्यावर्त देश ही सच्चा पारस मणि है, जिसको लोहे के सदृश दरिद्र विदेशी छूते ही धनाढ्य हो जाते हैं।

२७—सृष्टि के आदि से लेकर महाभारत तक सारी दुनिया पर राज्य करनेवाले सभी चक्रवर्ती राजा आर्यकुल ही में हुए थे। अब उनके सन्तानों का भाग्य फूट जाने से ये राज खोकर विदेशियों के पैरों तले रौंदे जा रहे हैं।

२८—जब आर्यों का राज्य था तब गाय-बैल आदि उपकारी पशु नहीं मारे जाते थे। दूध-घी और अन्न आदि अधिक होने से लोगों को भूख और बे-वक़्त मौत का शिकार नहीं बनना पड़ता था।

२९—जब भाई से भाई लड़ने लग जाता है, तभी तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है।

३०—जो मनुष्य स्वार्थी हैं, अपने ही प्राणों को पुष्ट करनेवाले और छली-कपटी हैं, वे असुर हैं। और जो जन परोपकारी, दूसरे के दुःख का नाश करनेवाले, तथा धर्मात्मा हैं वे 'देव' कहलाते हैं।

३१—गुण-कर्मानुसार वर्ण-व्यवस्था के विषय में यह आवश्यक है कि वर्तमान जन्म-मूलक जात-पाँत के बंधनों को

तोड़ कर विवाह हो। इस कार्य की सिद्धि के लिए प्रत्येक प्रान्त के समाज मिलकर यत्न करें।

३२—जन्म-मूलक जात-पाँत जब तक क़ायम है देश तथा आर्यों की उन्नति नहीं हो सकेगी। जात-पाँत तोड़े बिना वर्ण-व्यवस्था का क्रम ठीक न हो सकेगा। आज-कल वर्ण-व्यवस्था तो आर्यों के लिए मरण-व्यवस्था बन गई है। देखें, इस डाँकिन से आर्यों का पीछा कब छूटता है।

३३—यदि आपका तन-मन-धन गाय आदि उपकारक पशुओं की रक्षा में न लगे तो ये किस काम के हैं।

३४—ब्रह्मा से लेकर आज तक आर्य लोग पशुओं को मारना पाप और अधर्म समझते आये हैं।

३५—गो आदि पशुओं की रक्षा करने से अन्न मँहगा नहीं होने पाता और देश में निर्धन को भी दूध-दही मिल सकता है।

३६—जीवन थोड़ा है और परमेश्वर महान् है।

३७—पूरी विद्या पाकर दूसरे लोगों को ज्ञान देना ऋषि-कर्म है।

३८—परमात्मा की उपासना से ही आत्मा में आनन्द बढ़ता है और पापों का नाश होता है।

३९—सत्य मानना, सत्य बोलना, शुभ काम करना, इन्द्रियों को वश में रखना तप कहलाता है।

४०—जो मनुष्य धर्मात्मा नहीं, अविद्वान् है, जिसकी इन्द्रियाँ उसके वश में नहीं, जिसमें प्रभु की भक्ति नहीं, उससे ईश्वर बहुत दूर है।

अठारहवाँ परिच्छेद

मुक्ति-धाम को प्रस्थान

संवत् १६४० विक्रमी में स्वामी दयानन्दजी महाराज ने जोधपुर में वैदिक धर्म के प्रचार का निश्चय किया। जिस समय आप शाहपुर से चलने लगे तो लोगों ने निवेदन किया कि जहाँ आप जा रहे हैं वहाँ के लोगों की तबीयत बड़ी कड़ी है। कहीं ऐसा न हो, सचाई से चिढ़कर महाराज को कष्ट दें।

स्वामीजी ने उत्तर दिया—"यदि लोग हमारी उँगलियों को बत्तियाँ बना कर जला दें, तो भी चिन्ता नहीं। मैं वहाँ जाकर अवश्य सत्य का प्रचार करूँगा।

महाराजा जोधपुर की ओर से श्रीमहाराज के स्वागत का बहुत अच्छा प्रबन्ध किया गया था। राव राजा तेजसिंह और राव राजा ज्वानसिंह स्वामीजी की अगवानी के लिए रत्नाढ़ा तक पैदल गये। उन्होंने दूर से देखा कि एक संन्यासी गेरुए वेश में मस्ताना चाल से चले आ रहे हैं। उनके हाथ में एक लम्बा डंडा है। उनका चौड़ा माथा सूर्य की किरण से चमकनेवाले हीरे की भाँति चमक रहा है। उनके मनोहर मुखमण्डल से शान्ति और आनन्द बरस रहा है। नीले गुलाबी डोरोंवाली उनकी

रसीली आँखों की विमल ज्योति देखनेवाले के हृदय-मन्दिर को प्रकाशित किये देती है। उनके होंठों पर हलकी हलकी मुस्कराहट की मनभावनी झलक रह रहकर चमकती है। अनार के दानों के सदृश उनके मोती से दाँतों की पंक्ति दिव्य आभा दिखला रही है। उनकी दोनों भुजाएँ घुटनों तक पहुँचती हैं। उनका रङ्ग पिघले हुए सोने के समान है। इस गेरुवे वेश में उनका सर्वगुण-सम्पन्न शरीर ऐसा सुन्दर देख पड़ता था जैसे स्वर्ण के सिंहासन पर एक सोने की मूर्त्ति धरी हो। जब स्वामीजी धीरे धीरे निकट पहुँचे तब इन दोनों ने झुककर गुरुदेव के चरणों को अपने हाथों से छुआ। और फिर उन्हें ले जाकर मियाँ फ़ैज़ुल्लाख़ाँ के बाग़ में उतार दिया।

श्रीस्वामीजी जोधपुर में कई दिन तक धर्म का उपदेश करते रहे। इन उपदेशों में सर्वसाधारण के अतिरिक्त जोधपुर के महाराज श्रीयशवन्तसिंहजी भी पधारा करते थे। स्वामीजी सत्य का प्रकाश करते समय किसी की भी रियाअत नहीं करते थे। राव राजा तेजसिंहजी ने स्वामीजी से कहा कि आप महाराजाजी के चाल-चलन के संबन्ध में कोई अच्छी-बुरी बात न कहिएगा। परन्तु स्वामीजी ने उत्तर दिया कि मैं सचाई को प्रकट करने में किसी से भी नहीं डरता।

महाराजा जोधपुर की स्वामीजी पर बड़ी श्रद्धा-भक्ति थी। महाराजा साहब रोज़ स्वामीजी का उपदेश सुनने आया करते थे। एक दिन स्वामीजी आप ही उनके मकान पर चले गये। उस समय महाराजा के पास 'नन्हीजान' नाम की एक वेश्या आई हुई थी। स्वामीजी को आते देख महाराजा साहब ने नन्हीजान की पालकी को उठा ले जाने का इशारा किया। नन्हीजान का बड़ा सम्मान और दबदबा था। सभी नौकर-चाकर और कर्मचारी उससे काँपते थे।

कंजरी तो वहाँ से चली गई परन्तु इस दृश्य को देखकर भगवान् दयानन्द को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने महाराजा को रंडी-बाज़ी की लत को छोड़ देने का उपदेश देते हुए कहा—"राजन्, राजा लोग सिंह के समान समझे जाते हैं। जगह जगह पर भटकनेवाली वेश्या कुतिया के सदृश है। सिंह का कुतिया से प्रेम करना और उस पर आसक्त हो जाना अत्यन्त अनुचित है। इस बुरे व्यसन से सारा कुल नष्ट हो जाता है। इस लत को छोड़ देना चाहिए"।

नन्हीजान को भी इस बात की ख़बर लग गई। वह समझ गई कि जब तक स्वामीजी यहाँ हैं, राजा के यहाँ मेरी दाल न गलेगी। बस, उस दुराचारिणी दुष्टा स्त्री ने स्वामीजी के रसोइये जगन्नाथ के साथ मिलकर स्वामीजी को विष

मुक्तिधाम को प्रस्थान।--पृ० ६४

देने की सोची। एक दिन स्वामीजी की तबीयत ख़राब थी। आश्विन वदी चतुर्दशी संवत् १९४० विक्रमी की रात को महाराज ने अपने रसोइये से लेकर दूध पिया और फिर सो गये। थोड़ी ही देर आँख लगने पाई थी कि उनके पेट में सख्त दर्द होने लगा। इसी घबराहट में आपने तीन बार उलटी की। परन्तु किसी को जगाया तक नहीं। आप ही पानी लेकर कुल्ला कर लिया।

स्वामीजी सदा बहुत तड़के उठा करते थे। परन्तु दूसरे दिन वे देर से उठे और कहने लगे कि हमारा जी मचला रहा है, पेट में पीड़ा है, मुँह सूख रहा है। वैद्यों को बुलाया गया। बहुत सी ओषधियाँ बदल बदल कर दी गईं। परन्तु रोग को कुछ लाभ न हुआ, वरन् साथ अतिसार भी आने शुरू होगये। आठ नौ दिन में ही महाराज की हाड़-मांस की देह अत्यन्त दुर्बल होगई। उनके लोहे जैसे मज़बूत शरीर को विष के कीड़े ने घुन की तरह खोखला कर दिया। विष की ज्वाला पर जो चीज़ पानी समझ कर डाली जाती थी, कोई कह नहीं सकता, वह क्योंकर तैल का काम करती थी।

परम योगी दयानन्द से इस भेद का छिपा रहना मुश्किल था। उन्होंने अपने विष देनेवाले जगन्नाथ को जाँच कर पकड़ लिया। जगन्नाथ ने अपने इस नारकी पाप को

मान भी लिया। परन्तु मनुष्य को जो सुख-दुःख मिलता है वह उसके अपने ही कर्मों का फल होता है, दूसरा व्यक्ति तो बीच में केवल एक निमित्त बन जाता है। महर्षि दयानन्द इस बात पर दृढ़ विश्वास रखते थे। इसलिए उन्होंने जगन्नाथ को डाँट-डपट करना तो दूर उसे तू तक न कहा। वे बड़े गम्भीर स्वर में उससे कहने लगे—

"मेरे इस समय मरने से मेरा काम अधूरा रह गया। आप नहीं जानते इससे लोक-हित की कितनी भारी हानि हुई है। अच्छा, भगवान् की ऐसी ही इच्छा थी। इसमें आपका भी क्या दोष है। जगन्नाथ, लो ये कुछ रुपये हैं। मैं आपको देता हूँ। आपके काम आयेंगे। परन्तु जैसे भी हो, जोधपुर की सीमा से बाहर हो जाओ। नेपाल के राज्य में छिपने से ही आपके प्राण बच सकते हैं। यदि यहाँ के महाराजा को इस बात का पता लग गया तो आपका नाम-निशान मिटा कर छोड़ेंगे। जगन्नाथ, अब देर न करो। जाओ, चुपचाप भाग जाओ। देखना, अपने इस कर्म का किसी को संदेह तक न होने देना। मेरी ओर से बिलकुल निश्चिन्त रहना। मैं आपका भेद किसी पर भी प्रकट न करूँगा।"

भगवान् ने अपनी जीवन-ज्योति को बुझानेवाले जगन्नाथ को पकड़ा, उससे सब कुछ मनवा कर उसे रास्ते में ख़र्च के लिए

रुपये दिये और अन्त को बाल बाल बचा कर वहाँ से ऐसे निकाल दिया कि उनके अपने प्रेमी जन भी कुछ विचार में न ला सके। उन्होंने विष दिये जाने का नाम तक नहीं लिया।

जगन्नाथ ने भेस बदल कर पन्द्रह वर्ष नैपाल में काटे। संवत् १९७० विक्रमी के लगभग वह राजकोट में एक सज्जन से मिला था। उसने उनके सामने अपने पाप को माना भी था। कहते हैं, वह पीछे से पागल होकर मर गया।

स्वामीजी के रोग का समाचार सारे आर्यजगत् में फैल गया। अब स्वामीजी को जोधपुर में रखना उचित न समझा गया। वहाँ से उन्हें आबू पर्वत पर ले आये। परन्तु रोग दिन पर दिन बढ़ता ही गया। तब उन्हें इलाज के सुभीते के विचार से अजमेर ले आया गया। यहाँ उनकी अवस्था को देखकर एक अँगरेज़ डाक्टर ने साफ़ कह दिया कि आपको विष दिया गया है।

महाराज के बहुत अधिक बीमार होने का समाचार आर्य-समाजों में फैल चुका था। भक्त लोग दर्शनों के लिए बराबर आया जाया करते थे। लाहौर-आर्य-समाज की ओर से पण्डित गुरुदत्तजी एम० ए० अजमेर गये थे।

संवत् १९४० के कार्त्तिक मास की अमावस्या और मंगलवार का दिन था। साँझ के पाँच बजा चाहते थे।

महाराज के सारे शरीर पर विष के छाले उभर रहे थे और साँस रुक कर आती थी। इससे उन्हें भारी कष्ट हो रहा था। एक भक्त ने पूछा—महाराज की तबीयत कैसी है?

स्वामीजी ने उत्तर दिया—अच्छी है। प्रकाश और अंधकार का मिलाप है।

इन्हीं बातों में जब साढ़े पाँच बजे, तो महाराज ने कमरे के सब द्वार और खिड़कियाँ खुलवा दीं और भक्तों को अपने पीछे खड़े होने की आज्ञा दी। फिर पूछा कि आज पक्ष, तिथि, और वार कौन सा है? पण्ड्या मोहनलाल ने सिर नवा कर कहा—"प्रभो, कार्त्तिक कृष्णपक्ष का अन्त और शुक्ल का आरम्भ है। अमावस और मंगलवार है।"

इसके बाद महाराज ने अपनी दृष्टि को कमरे के चारों ओर घुमाया। फिर बड़े गम्भीर स्वर से वेद-मंत्रों का पाठ करने लगे। उनके स्वर से, उनकी ध्वनि से तनिक भी दुर्बलता न टपकती थी।

भगवान् के होनहार भक्त पण्डित गुरुदत्तजी उस कमरे के एक कोने में दीवार के साथ लगे हुए महाराज की मनुष्य-लीला की समाप्ति का दृश्य देख रहे थे। उनकी दृष्टि महाराज पर टिकी हुई थी।

पण्डितजी ने इस धर्म्मावतार के दर्शन पहली ही बार किये थे। आप आत्मा और परमात्मा को न मानते थे। आत्मा की शक्ति में उनका विश्वास न था। परन्तु स्वामीजी की इस अन्तिम अवस्था को देखकर वे दंग रह गये। वे देख रहे थे कि मृत्यु सिरहाने खड़ी है। शरीर पर अगणित छाले फूट रहे हैं। घोर पीड़ा हो रही है। महाराज का शरीर जलन से जल रहा है। आत्मा शरीर को छोड़ने की तैयारी में है। परन्तु महात्मा चुपचाप आराम से बैठे हैं। हाय तक नहीं करते। वरन् वेद-मंत्र गा रहे हैं। उनका मुख-मंडल हँस रहा है। आँखें कमल की भाँति खिल रही हैं। मस्तक चन्द्रमा के सदृश चमक रहा है। मानों रोग उनके पास तक नहीं आया। कष्ट को सहारने की यह अनुपम शक्ति शरीर की नहीं। अवश्य यह आत्मा का बल है।

यह पहली घड़ी थी जब कि महर्षि की मृत्यु का अन्तिम दृश्य देख कर श्री० गुरुदत्तजी जैसे घोर नास्तिक के हृदय में आध्यात्मिकता की जड़ जम गई। इन विचारों के उत्पन्न होते ही वे एक-दम चौंक पड़े। उन्होंने क्या देखा कि एक ओर तो परम धाम को पधारने के लिए परमहंस दयानन्द पलँग पर बैठे प्रभु-प्रार्थना कर रहे हैं, और दूसरी ओर वे व्याख्यान देने के वेश में सजे हुए उसी कमरे की छत के साथ लगे बैठे हैं।

अध्यात्म-शक्ति का यह प्रकट प्रमाण देखकर पण्डितजी की अन्तरात्मा आत्मिक प्रकाश से एक-दम जगमगा उठी। मानों एक ओर से निकलती हुई ज्योति उनकी देह के दीपक में प्रवेश कर गई।

गुरुदत्तजी गुरुदेव को फिर बड़ी श्रद्धा के साथ देखने लगे। योगीश्वर दयानन्द ने वेद-मंत्रों का गान करने के बाद प्रेम और प्रीति से संस्कृत में परमात्मदेव की प्रार्थना करना आरम्भ कर दिया। फिर आर्य भाषा—हिन्दी—में ईश्वर के गुण गाते हुए भक्तों की परमगति भगवती गायत्री का जाप करने लगे। इस महामंत्र का पवित्र पाठ करते करते वे चुप होगये और देर तक सोने की मूर्त्ति की तरह बिना हिले-डुले समाधि में बैठे रहे। इस समय आपके मुखारविन्द पर स्वर्गीय आनन्द की छटा झिलमिला रही थी।

समाधि को भङ्ग करने के बाद महाराज ने दोनों आँखें खोल दीं और दिव्य ज्योति की किरणें छोड़ते हुए कहा—"हे दयामय! हे सर्वशक्तिमान्! तेरी यही इच्छा है। परमात्म-देव! तेरी इच्छा पूर्ण हो! अहा, मेरे परमेश्वर! तूने अच्छी लीला की!"

इन शब्दों के साथ ही ब्रह्मर्षि ने परमधाम को जाने के लिए अपने आत्मिक प्राणों को स्वर्ग की सीढ़ी पर चढ़ाया,

और फिर श्वास को कुछ देर तक भीतर रोक कर "ओ३म्" कहते हुए एकबारगी बाहर निकाल दिया।

महाराज की देह के निर्जीव होते ही उपस्थित सज्जनों के नेत्रों से आँसुओं की नदियाँ बहने लगीं। भक्तजनों ने रो-रोकर कमरे की दीवारों को भिगो दिया। इस दारुण दुःख से उनके हृदय फट गये। रोते रोते उनकी घिग्घियाँ बँध गईं।

दुखिया भारत-माता का सच्चा सुपूत, मनुष्य-मात्र का हित-चिन्तक, बाल ब्रह्मचारी, वेदों का अद्वितीय पण्डित, भगवान् दयानन्द संवत् १९४० विक्रमी की दीवाली के दिन सायंकाल छः बजे इस असार संसार को छोड़कर अमर-धाम को प्रस्थान कर गया। उस समय सूर्य भी डूब रहा था। रात का अँधेरा क्षण क्षण में बढ़ता जा रहा था। एक ओर भौतिक जगत् में अमावस का घटाटोप अंधकार था और दूसरी ओर उस वेदों के सूर्य के अस्त हो जाने से आध्यात्मिक जगत् में अँधेरा छा गया था। भारत-जननी दीवाली के हज़ारों लाखों दीपक जलाकर उस खोये हुए कलेजे के टुकड़े को ढूँढ़ रही थी।

दिन रैन जगाये गये हमको।
दुख-भञ्जक-रूप पिता जो हमारे॥

पाखंड दूर किये सिगरे ।
अंध मोह-निशा के मिटे सब तारे ॥

हाथ में वैदिक दण्ड धरा ।
जग में गरजे तब स्वामी हमारे ॥

पर शोक यही हमको अब है ।
जब नींद खुली तब आप पधारे ॥

दयानन्द-दर्शन

जहाँ घोषणा राम के नाम की है।
जहाँ कामना कृष्ण के काम की है॥
अहिंसा जहाँ शुद्ध बुद्धार्य्य की है।
प्रशंसा जहाँ शङ्कराचार्य की है॥
वहाँ दैव ने दिव्य योगी उतारे।
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे॥

अनायास चेता गया एक चूहा।
गिरी भूल ऊँची चढ़ी उच्च ऊहा॥
जड़ीभूत भूतेश की भक्ति जागी।
महादेव के प्रेम की ज्योति जागी॥
उठे इष्ट की ओर सीधे सिधारे।
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे॥

हितू, बंधु, माता, पिता, मित्र छोड़े।
लगे मुक्ति की खोज में बंध तोड़े॥
भले भोग त्यागे गही योग-शिक्षा।
फिरे देश में माँगते धर्म्म-भिक्षा॥
बने भद्रिका भारती के दुलारे।
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे॥
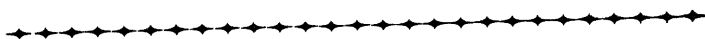
टिका टेक ठाना उसी ठौर जाना ।
जहाँ ठीक पाना सुना था ठिकाना ॥
मिले योगियों से निकाली सचाई ।
मिटा अंधविश्वास सूझी सचाई ॥
कहाये विरजानन्द के शिष्य प्यारे ।
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे ॥
मनोभावना साधना में मिलाई ।
सुधा ध्यान को धारणा की पिलाई ॥
समाधिस्थ हो ब्रह्म से लौ लगाई ।
मिली सम्पदा सिद्धियों की न भाई ॥
टिके एकता में मिटा भेद सारे ।
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे ॥
रहे आदि से अन्त लों ब्रह्मचारी ।
पढ़ी वेद-विद्या अविद्या बिसारी ॥
कहा सज्जनों से बनो स्वर्गभोगी ।
भजो सच्चिदानन्द को मुक्ति होगी ॥
न होना कभी आलसी यों पुकारे ।
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे ॥
लुटेरे मतों का किया ढाँच ढीला ।
लताड़ी छुआछूत की झूठ लीला ॥

दिखा दोष पाखंड का खोज खोया।
खलो पाड़ खोटे खलों को दगोया ॥
प्रमादी पछाड़े किसी से न हारे।
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे ॥
प्रसादी सदा प्रेम की बाँटते थे।
घृणा से किसी को नहीं डाँटते थे ॥
सजीला सदाचार को जानते थे।
न चोखा किसी चिह्न को मानते थे ॥
कभी वस्त्र धारे कभी थे उघारे।
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे ॥
न खाता किसे काल कूटस्थ अत्ता।
वही सिंधु में बूँद की भक्तिमत्ता ॥
दिया न्याय का नीचता ने बुझाया।
दया और आनन्द का अन्त आया ॥
दिवाली हुई हाय! होली पुजारे।
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे ॥

नाथूराम शङ्कर शर्मा

उन्नीसवाँ परिच्छेद

स्वामी दयानन्द का काम

श्री स्वामीजी महाराज को अपने योगबल और गुरु विरजानन्दजी से पाई हुई वेदार्थ की कुञ्जी की सहायता से यह मालूम हो गया था कि वेद ही सच्ची ईश्वर की वाणी है। वेद ही नरों के कल्याण के लिए नारायण का दिया हुआ उपदेश है। इसी पर चलने से मनुष्यों की भलाई हो सकती है। इसी का सहारा लेने से संसार में सच्चा सुख और शान्ति फैल सकती है। इसलिए वैदिक धर्म्म का प्रचार ही महाराज के जीवन का उद्देश्य बन गया था। आपने जो भी काम किये सब इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए किये।

स्वामीजी ने चैत्र सुदी ५ संवत् १९३२ विक्रमी को बम्बई में पहला 'आर्यसमाज' स्थापित किया। फिर संवत् १९३४ में बम्बई आर्यसमाज के नियमों का संशोधन कर लाहौर में आर्यसमाज बनाया। स्वामीजी के बाद आर्यसमाज ही उनका प्रतिनिधि और स्मारक है। उनके शुरू किये हुए काम को पूरा करना आर्यसमाज ने अपना कर्तव्य ठहराया है। इसी लिए वह तन-मन-धन से वैदिक धर्म्म के प्रचार में लगा हुआ है।

आर्यसमाज के नियम बहुत ही पवित्र और उच्च हैं। उनकी संख्या दस है। परन्तु उनमें सब अच्छी बातें आ जाती हैं। इन नियमों को मानने और इन पर चलनेवाला ही सच्चा आर्य है। वे नियम ये हैं—

१—सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सत्य विद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म्म है।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५—सब काम धर्म्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य का विचार करके करने चाहिए।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सबसे प्रीतिपूर्वक धर्म्मानुसार यथायोग्य बर्तना चाहिए।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतंत्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतंत्र रहें।

स्वामीजी का सबसे आवश्यक काम वेद-भाष्य अर्थात् वेद का हिन्दी में अनुवाद है। वेद के सच्चे अर्थों को समझने के लिए केवल संस्कृत-भाषा और संस्कृत-व्याकरण का जानना ही पर्याप्त नहीं। महर्षिगण योग-विद्या और ब्रह्मचर्य के बल से मन को एकाग्र करके ही वेदार्थ जानने में समर्थ हुए थे। जिन लोगों ने केवल संस्कृत-व्याकरण की सहायता से वेद का अर्थ करने का यत्न किया, उन्हें इसमें बिलकुल सफलता नहीं हुई। उनके किये हुए ऊट-पटाँग अर्थों को देखकर हँसी आती है। स्वामी दयानन्द उस उच्च कोटि के महर्षि थे जो समाधि में बैठकर वेदों के सच्चे अर्थ को देखते थे। इसी लिए आज लोग चकित हैं कि उन्होंने ऐसे अच्छे अर्थ कैसे कर लिये!

स्वामीजी के पास समय थोड़ा था और काम बहुत। इसलिए वे केवल लगभग डेढ़ वेद का ही भाष्य कर पाये। परन्तु इतने ही से उन्होंने वेदार्थ की सच्ची विधि लोगों के सामने रख दी। उन्होंने योरुपीय विद्वानों के किये हुए वेद-भाष्य की अशुद्धियाँ दिखाकर उनकी खूब धज्जियाँ उड़ाईं। स्वामीजी ने समस्त संसार के विद्वानों को ललकारा कि आओ, वेद के संबंध में हमारे साथ विचार कर लो, परन्तु उनके जीते-जी किसी को भी सामने आने का साहस न हुआ।

स्वामीजी अनेक पुस्तकें लिख गये हैं। उनमें सबसे प्रसिद्ध सत्यार्थप्रकाश है। इस ग्रन्थ में स्वामीजी ने वेद-शास्त्रों का निचोड़ भर दिया है। इस अद्भुत पुस्तक के पाठ से मनुष्य की आँखें खुल जाती हैं और उसे सच्चे और झूठे धर्म्म की पहचान हो जाती है।

बीसवाँ परिच्छेद

वेद

"वेद वर्तमान सृष्टि के आरम्भ के पहले भी मौजूद था क्योंकि यह नित्य परमेश्वर का सदा से मौजूद और सदा रहनेवाला ज्ञान है, इसलिए यह सारे संसार के लिए है।" आर्य लोगों का ऐसा ही विश्वास है। वे मानते हैं कि वेद किसी मनुष्य का बनाया हुआ नहीं।

जिस प्रकार दियासलाई बिना रगड़ के या बिना आग के नहीं जल सकती, चाहे उसमें जल उठने की शक्ति पहले से मौजूद होती है, वैसे ही मनुष्य को जब तक बाहर से ज्ञान की चिङ्गारी न मिले, तब तक उसके भीतर की बुद्धि और दूसरी शक्तियाँ विकसित नहीं हो सकतीं। संसार का अनुभव हमें बताता है कि बालक कभी उन्नति नहीं कर सकता जब तक कोई विद्वान् उसे शिक्षा न दे। राजा अकबर और शाम देश के महाराजा असुर बनिपाल ने इस संबंध में परीक्षण किये थे। उन्होंने एक बालक को बस्ती से बहुत दूर एक जंगल में रक्खा जिससे उसे मनुष्य की भाषा का पता न लगे। उसकी देख-रेख के लिए भी गूँगी और बहरी स्त्रियाँ ही रक्खी गई थीं। बारह वर्ष के बाद जब उसे राजसभा में लाया गया तो वह मनुष्य की भाषा न बोल सकता

था। केवल बकरी की तरह "मैं, मैं" करता था। पता लगाने पर मालूम हुआ कि जहाँ उसे रक्खा गया था उसके निकट ही एक बकरी बँधी रहती थी जो 'मैं, मैं' किया करती थी। उसी से बच्चे ने मैं मैं करना सीख लिया।

कई वर्ष हुए भेड़िये की माँद में पला हुआ एक लड़का बरेली के आर्य-अनाथालय में लाया गया था। वह कच्चा मांस खाता और भेड़िये की तरह चलता था। उस लड़के को बचपन में एक भेड़िया उठा ले गया था और उसी ने उसे पाला था।

सृष्टि के आरम्भ में मनुष्य, बुद्धि की दृष्टि से, बच्चे के सदृश थे। इसलिए उनकी शिक्षा के लिए बाहर से ज्ञान की चिंगारी आने की आवश्यकता थी। और वह ज्ञान-ज्योति सर्वज्ञ परमेश्वर के सिवा और कौन दे सकता था। सो उस समय मनुष्यों को रास्ता दिखाने के लिए जो ज्ञान ईश्वर की ओर से मिला, वही वेद है।

ईश्वरी ज्ञान की कसौटियाँ—इस समय पारसी अपनी ज़िन्दावस्था को, ईसाई अपनी इंजील को, मुसलमान अपने क़ुरान को, और सिक्ख अपने "ग्रन्थ" को ईश्वरी ज्ञान बता रहे हैं। अब इनमें से कौन सच्चा ईश्वरी ज्ञान है, इसकी परीक्षा करने के लिए आगे लिखी कसौटियाँ हैं—

पहली कसौटी यह है कि उसके नाम से ही प्रकट हो कि वह ज्ञान है, न कि पुस्तक। पुस्तक बनानेवाला मनुष्य हो सकता है, न कि परमेश्वर। परमेश्वर तो केवल हृदयों में ही ज्ञान की ज्योति डालेगा, न कि क़लम-दवात लेकर पुस्तक लिखेगा।

अब ज़िन्दावस्था का अर्थ है "पवित्र लेख की व्याख्या"। इससे प्रकट है कि किसी धर्मात्मा मनुष्य ने इसे लिखा है।

अंजील का अर्थ है "बहुत सी पुस्तकें"। इसके दो भाग हैं—पुराना सुसमाचार और नया सुसमाचार। इससे प्रकट होता है कि बहुत सी पुस्तकें इकट्ठी करके अंजील (बाइबिल) बनाई गई थी। और उसमें लिखी घटनाओं की सचाई के लिए गवाहियाँ ढूँढ़ी गईं। अब परमात्मा के संबंध में यह कहना कि उसने बहुत सी पुस्तकों को लेकर इकट्ठा किया और उनकी बातों की सत्यता को परखने के लिए साक्षियाँ ढूँढ़ीं, परमात्मा का अपमान करना है।

'अलक़ुरान' दो शब्दों से बना है—अल और क़ुरान। इनका अर्थ है वह लेख जो विशेष रूप से पढ़ा गया हो। इससे सिद्ध है कि अलक़ुरान भी लिखी हुई पुस्तक का नाम है, न कि ईश्वर के ज्ञान का।

"ग्रन्थ साहब" का अर्थ तो स्पष्ट ही पुस्तक है।

वेद का अर्थ है 'ज्ञान'। यह किसी लेख या पुस्तक का नाम नहीं, वरन् उस ज्ञान का नाम है जिसका प्रकाश परमात्मा ने मनुष्यों के कल्याण के लिए किया है।

दूसरे ईश्वरी ज्ञान का सृष्टि के आदि ही में होना आवश्यक है। यदि ऐसा न हो तो परमेश्वर पर पक्षपात का दोष आता है, क्योंकि यदि ईश्वरीय ज्ञान बाद को होगा तो उसके पहले उत्पन्न होनेवाले मनुष्य उससे लाभ न उठा सकेंगे, और उनको संसार में सुख और मुक्ति न मिल सकेगी। अब सब कोई यह मानते हैं कि क़ुरान से अंजील और अंजील से ज़िन्दावस्था और ज़िन्दावस्था से वेद पुराना है। ज़िन्दावस्था तो पाँच सहस्र वर्ष से भी कम पुरानी है, क्योंकि इसमें महर्षि व्यास का उल्लेख है। अंजील को बने केवल १९२९ वर्ष हुए हैं, जैसा कि ईसा का संवत् ही प्रकट कर रहा है।

परमात्मा सब कुछ जानता है। उसके काम में कोई त्रुटि और भूल नहीं होनी चाहिए। परन्तु अंजील, क़ुरान और पुराणों में सहस्रों बातें सृष्टि-क्रम और ईश्वर के नियम के विरुद्ध मिलती हैं। इसलिए इन पुस्तकों में से कोई भी ईश्वरीय ज्ञान नहीं कहला सकती। वेद ही केवल ऐसा है जिसमें एक भी बात सृष्टि-क्रम के विरुद्ध नहीं।

वेद में सब सत्य विद्याओं के बीज या सिद्धान्त हैं। मनुष्य आगे अपने यत्न से उनको बढ़ा कर लाभ उठा सकता है। अंजील और क़ुरान में विद्याओं के सिद्धान्तों का होना तो दूर रहा, उनमें ऐसी बुद्धि के विरुद्ध बातें मिलती हैं कि कोई भी समझदार मनुष्य उन्हें स्वीकार नहीं कर सकता। उदाहरणार्थ लिखा है कि भूमि चौड़ी है, फरिश्ते आकाश में परमेश्वर के सिंहासन को उठाये हुए हैं, संसार को बने छः सहस्र वर्ष हुए हैं, इत्यादि।

वेद का ज्ञान आदि-सृष्टि में चार ऋषियों के मन में ईश्वर ने डाला। यदि कोई पूछे कैसे? तो उसका उत्तर यही है कि जिस प्रकार आज-कल भी एक प्रबल इच्छा-शक्ति रखने-वाला मनुष्य मेसमरेज़म और हिप्नाटिज़म के द्वारा एक निर्बल इच्छावाले मनुष्य के हृदय में अपने विचार डाल सकता है और एक अरबी या अँगरेज़ी न जाननेवाले व्यक्ति से भी, उस पर संमोहन-क्रिया करके, अरबी और अँगरेज़ी के लम्बे लम्बे वाक्य बुलवा सकता है, वैसे ही परमात्मा ने भी अपनी इच्छा-शक्ति से इन चार महर्षियों के हृदय में वेद का ज्ञान डाल दिया। शतपथब्राह्मण कांड ११, अध्याय ५ में साफ़ लिखा है कि परमात्मा ने अग्नि ऋषि के हृदय में ऋग्वेद का, वायु ऋषि के हृदय में यजुर्वेद का, और सूर्य (आदित्य) ऋषि के

हृदय में सामवेद का प्रकाश किया। इतना ही नहीं। सिक्खों के धर्म्म-'ग्रन्थ' में भी वेद के ईश्वरीय ज्ञान होने की साक्षी मिलती है। वहाँ लिखा है--

नौ सत चौदह तीन चार कर महलत चार बहाली।
चारे दीवे चौंह हत्थीं दिये एकाएकी बारी॥
मेहरबान मधुसूदन स्वामी ऐसी शक्ति तुम्हारी॥

[राग वसन्त, हिण्डोल, मुहल्ला पहला, घर दो]

अर्थात् परमेश्वर ने नौ खण्ड पृथ्वी, सात द्वीप, चौदह भुवन, तीन गुण, और चार युग का महल—जगत्—तैयार किया। फिर इस जगत्रूपी महल में प्रकाश के लिए चार दीपक अर्थात् चार वेद चार हाथों में अर्थात् चार ऋषियों को एक ही बार दे दिये। हे दयालु परमेश्वर, तुझमें ऐसा सामर्थ्य है।

इसलिए स्वामी दयानन्दजी का कहना ठीक है कि वेद ही सच्ची भगवद्वाणी है। उसी पर चलने से सच्चा सुख और मुक्ति प्राप्त हो सकती है। ईसाइयों की बाइबिल और मुसलमानों के क़ुरान में जो बातें भरी पड़ी हैं वे बहुत कुछ हिन्दुओं के पुराणों की गप्पों का ही बिगड़ा हुआ रूप है।

इक्कीसवाँ परिच्छेद

पुनर्जन्म

वैदिक धर्म्म का यह ध्रुव सिद्धान्त है कि आत्मा कभी नहीं मरती। वह शरीर बदलती है। मृत्यु अर्थात् शरीर से जुदा होते समय वह पिछले जन्म की स्मृति नहीं वरन् उसके संस्कार अपने साथ ले जाती है। जो मनुष्य पुण्य कर्म करते और विद्या पढ़ते हैं उनके पुण्य कर्म और विद्या का संस्कार शरीर से अलग होने के बाद भी उनकी आत्मा पर बराबर बना रहता है। इसी कारण वे अगले जन्म में दूसरों की अपेक्षा जल्दी और आसानी से विद्या प्राप्त कर लेते हैं। और उनकी प्रवृत्ति शुभ कार्यों की ओर हो जाती है। इस प्रकार प्रत्येक जन्म में आत्मा को स्वच्छ और निर्मल करते रहने से वह समय आ जाता है जब कि वह मरने और जन्म लेने के बंधन से छूटकर मुक्त हो जाती है।

यद्यपि साधारण लोगों को अपने पिछले जन्म की बातें याद नहीं रहतीं, तो भी कभी कभी कोई एक बालक ऐसा उत्पन्न हो जाता है जो अपने पिछले जन्म की बातें ठीक ठीक बताने लगता है। ऐसी ही दो घटनायें आगे दी जाती हैं।

[१]

सन् १९२३ में मुझे पण्डित मेलाराम नाम के एक सज्जन मिले थे। वे मुलतान ज़िले के तलम्बा नामक ग्राम में पटवारी थे। उन्होंने मुझे सुनाया था कि पहले मैं तलम्बा से कोई बीस मील की दूरी पर एक गाँव में पटवारी था। वहाँ मेरे यहाँ एक लड़की उत्पन्न हुई। कुछ दिन बाद मेरी बदली तलम्बा को हो गई। मैं वहाँ बाल-बच्चों-समेत रहता था। जब मेरी लड़की कोई चार वर्ष की हुई तो एक दिन वह अपनी माता से कहने लगी कि आज मैं अपने घर जाऊँगी। मेरी स्त्री ने पूछा, तेरा घर कहाँ है? तब वह आगे आगे चल पड़ी और मेरी स्त्री उसके पीछे पीछे हो ली। वह चलते चलते एक दूसरे मनुष्य के घर में पहुँची। और उसकी स्त्री की ओर संकेत करके कहने लगी कि यह मेरी माँ थी। मेरा नाम पिछले जन्म में वसन्ती था। तब मैं बड़ी थी और पानी की भरी हुई बटलोही उठा सकती थी।

उस स्त्री ने भी कहा कि हाँ कोई चार वर्ष हुए वसन्ती नाम की मेरी एक लड़की बारह वर्ष की आयु में इंफ्लूयंज़ा ज्वर से मर गई थी।

लड़की ने यह भी बताया कि मैं स्कूल जाया करती थी। हमारा स्कूल गाँव के उस तरफ़ था। परन्तु इस समय यह

स्कूल उस ओर न था। मेरी स्त्री ने कहा—तू झूठ कहती है। तब उस पुरुष की स्त्री ने कहा—नहीं, यह लड़की ठीक कहती है। पहले स्कूल उधर ही हुआ करता था जिधर यह कहती है।

इस छोटी बालिका को अभी पढ़ाना आरम्भ भी नहीं किया था कि एक दिन वह देवनागरी की सारी वर्णमाला बोलकर सुनाने लगी और बोली, मैं यह पढ़ा करती थी। जब वह कोई पाँच वर्ष की हुई तो उसको सारी वर्णमाला भूल गई। अब वह उसे दुबारा सीख रही है। महाशय मेलाराम ने अपनी लड़की का यह वृत्तान्त लाहौर के 'आर्यगज़ट' में भी छपवाया था।

[२]

श्रावण १९८४ विक्रमी की माधुरी पत्रिका में पुनर्जन्म पर पं० कृष्णविहारी मिश्र का एक लेख छपा है। उसमें आपने ७ ऐसे बालकों के वृत्तान्त दिये हैं जिन्होंने अपने पूर्व जन्मों की बातें बताई हैं। चार बालकों के चित्र भी दिये गये हैं। उनमें से एक वृत्तान्त वहीं से लेकर आगे दिया जाता है।

हीराकुँवरि का वृत्तान्त

बा० श्यामसुन्दरलाल, स्टेशनमास्टर, हलद्वानी आर० के० आर० ने तारीख़ ३१ अगस्त सन् १९२६ को मुझे दर्शन

देने की कृपा की और अपनी पुत्री हीराकुँवरि को भी अपने साथ लेते आये। इस कन्या का जन्म सितम्बर सन् १९१९ में बरेली में हुआ था और उसने एक बड़े ही विचित्र ढंग से अपने पूर्व जन्म के मकान को पहचाना था। पूर्व जन्म में यह कन्या एक लड़का थी। यह गोकुल ज़िला मथुरा का रहनेवाला था। यह सन् १९१८ के अक्टूबर मास में १२ वर्ष की आयु में मरा था।

बा० श्यामसुन्दरलालजी अगस्त १९२२ में तीर्थयात्रा के लिए गोकुल गये थे। जिस समय वे उस स्थान से होकर गुज़र रहे थे, जिसे लोग नन्द और यशोदा का पुराना घर बताते हैं तो यह लड़की ज़बरदस्ती नौकर की गोद से उतर पड़ी। पास ही एक छोटा सा मकान था। उसके द्वार पर एक बुढ़िया बैठी थी। लड़की बड़ी तेज़ी के साथ उस मकान के भीतर घुसती चली गई। उसकी माँ भी उसके साथ साथ गई। यहाँ वह लड़की लड़के की तरह बातें करने लगी। पहले उसने उस तख़्ती के विषय में पूछा जिस पर वह लिखा करती थी। दूसरी चीज़ जिसके बारे में उसने पूछा वह चौकी थी जिस पर बैठकर वह लिखा करती थी। इन प्रश्नों को सुनकर वह बुढ़िया रोने लगी।

तब उस लड़की ने बुढ़िया से कहा कि हमारी माँ को पान दो। सुपारी हमारे पीतल के सरौते से काट लो। इसके बाद

उसने अपनी माँ से कहा कि तुम चली जाओ, क्योंकि मैं अपने घर आ गई हूँ। किन्तु जाने के पहले पान ले लो। हीराकुँवरि की माता ने नौकर को इशारा किया और वह लड़की को उठा-कर मकान से बाहर ले आया।

इसके बाद सब लोग जमुनाजी की ओर चले गये। वहाँ पहुँच कर उन्होंने कछुओं को चने और लाई चुनाई। कछुओं को देखकर हीराकुँवरि ने कहा—"तुमने पहले मुझे डुबा दिया था और इस बार फिर वही करने के लिए आये हो।"

यह सुनते ही, जो बुढ़िया साथ में आई थी, वह फिर फूट फूट कर रोने लगी। आगे और पूछने पर उस लड़की ने वह स्थान भी बताया जहाँ नहाते समय वह फिसल पड़ी थी और डूब कर मर गई थी। बुढ़िया ने लड़की की सारी बातों को सच्ची बताया। उसने कहा, लगभग चार वर्ष हुए, मेरा एक बारह वर्ष का लड़का इसी स्थान पर डूब कर मर गया था।

बाईसवाँ परिच्छेद

आर्यसमाज

हम पहले कह आये हैं कि श्री स्वामी दयानन्दजी महाराज ने वैदिक धर्म के प्रचार के लिए 'आर्यसमाज' नाम की एक संस्था बनाई थी। यह समाज इस समय निम्नलिखित रीतियों से अपना काम कर रहा है:—

१—धर्म्म-प्रचार

२—विद्या-प्रचार

३—सामाजिक सुधार

४—दलितोद्धार और शुद्धि

५—अनाथों और विपत्ति में पड़े हुए नर-नारियों की सहायता।

धर्म्म-प्रचार के लिए भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में प्रान्त भर के सारे आर्यसमाजों की एक प्रतिनिधि सभा है। इसका नाम आर्यप्रतिनिधिसभा है। इसके प्रबंध से बहुत से उपदेशक, महात्मा और संन्यासी प्रान्त में वैदिक धर्म्म का प्रचार करते हैं। पंजाब और संयुक्त-प्रान्त आगरा और अवध में शायद

ही कोई ऐसा नगर और ग्राम होगा जहाँ आर्यसमाज न हो। आर्यसमाज जाल की तरह हर जगह फैला हुआ है।

राजपूताना, बम्बई, बंगाल और बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान और ब्रह्मा की भी अपनी अपनी आर्यप्रतिनिधिसभाएँ हैं। अब मद्रास में भी आर्यसमाज का अच्छा प्रचार है।

अफ्रीका, फ़ीजी, इँगलेंड, मारीशस, जर्मनी आदि देशों में भी आर्यसमाज स्थापित होगया है। आर्यसमाज के उपदेशक लोगों को वैदिक धर्म्म की ख़ूबियाँ सुनाते हैं। वे मुसलमान, ईसाई और पुराणों को धर्म्म-ग्रन्थ माननेवाले हिन्दुओं के साथ शास्त्रार्थ करके इन धर्म्मों की पोल भी खोलते हैं, क्योंकि आर्यसमाज का विश्वास है कि सत्य धर्म का प्रचार किये बिना संसार में सुख और शान्ति नहीं हो सकती।

उपदेशकों और प्रचारकों के अतिरिक्त आर्यसमाज के अपने कई समाचार-पत्र भी हैं, जो लेख लिखकर वैदिक धर्म्म का प्रचार करते हैं। प्रतिवर्ष कई पुस्तकें भी इसी उद्देश्य से प्रकाशित की जाती हैं।

विद्या के प्रचार के लिए आर्यसमाज ने दो प्रकार के शिक्षणालय खोल रक्खे हैं। एक तो प्राचीन ऋषि-प्रणाली पर हैं। उनमें लड़कों को छोटी आयु में भरती किया जाता है और उन्हें ब्रह्म-

चारी बना कर वेदों का पण्डित बनाने का यत्न किया जाता है। ऐसे शिक्षणालयों का नाम गुरुकुल है। गुरुकुलों का सरकारी विश्वविद्यालयों से कोई संबंध नहीं। ये बिलकुल स्वतंत्र हैं। इनमें वेद की शिक्षा के साथ साथ उच्च कोटि का पश्चिमी पदार्थ-विज्ञान, दर्शन और अँगरेज़ी भी पढ़ाई जाती है। इस समय दो बड़े गुरुकुल हैं—एक हरिद्वार के निकट और दूसरा वृन्दावन में।

सरकारी विश्वविद्यालय से संबंध रखनेवाले कालेज भी आर्यसमाज ने खोले हैं। सबसे बड़ा कालेज लाहौर में है। उसका नाम श्रीमद्दयानन्द एँग्लो वैदिक कालेज है। जितने विद्यार्थी इसमें पढ़ते हैं उतने पंजाब के किसी भी दूसरे कालेज में नहीं पढ़ते। यहाँ के लड़के परीक्षाओं में भी बहुत अच्छे रहते हैं।

आर्यसमाज ने स्कूल भी अगणित खोल रक्खे हैं। पंजाब का शायद ही कोई नगर ऐसा होगा जहाँ आर्यस्कूल न हो। आर्यसमाज ने लड़कियों की शिक्षा पर भी बहुत ध्यान दिया है। हिन्दू लोग पहले लड़कियों को पढ़ाना बहुत बुरा समझते थे। वे आर्यसमाजियों पर हँसते थे। परन्तु इन वीरों ने उनकी हँसी की कुछ भी परवा न करके स्त्री-शिक्षा के काम को जारी रक्खा।

आर्यों की लड़कियों के लिए सबसे बड़ा शिक्षणालय जालंधर का कन्या-महाविद्यालय है। इसका संबंध सरकारी विश्वविद्यालय से नहीं। यहाँ कालेज तक कन्याओं को शिक्षा दी जाती है। और काठियावाड़, गुजरात और ब्रह्मा आदि दूर दूर स्थानों से लड़कियाँ यहाँ शिक्षा पाने आती हैं। इन शिक्षणालयों के अतिरिक्त लगभग प्रत्येक बड़े आर्यसमाज के अधीन एक कन्या-पाठशाला है। इनसे देश में पढ़ी-लिखी लड़कियों की संख्या दिन पर दिन बढ़ रही है और अविद्या का अँधेरा दूर हो रहा है।

आर्यसमाज सामाजिक सुधार पर भी बहुत ज़ोर देता है। पहले हिन्दू लोग लड़के और लड़कियों का विवाह बहुत छोटी आयु में कर देते थे; क्योंकि वे समझते थे कि बारह वर्ष की कुँआरी कन्या को घर में रखने से माता-पिता को पाप लगता है। इस बचपन के विवाह से लड़के और लड़कियों की भारी हानि होती थी। अब आर्यसमाज के प्रचार से लोग प्रायः जवानी में विवाह करने लगे हैं।

हिन्दू-विधवाओं की अवस्था बहुत बुरी थी। घरवाले उनके साथ बहुत बुरा सुलूक करते थे। उनका जीवन उनके लिए दूभर हो जाता था। हिन्दू पुरुष तो कई कई विवाह कर लेता था परन्तु आठ आठ नौ नौ वर्ष की आयु की विधवाओं को भी

दुबारा विवाह करने की आज्ञा न थी। इसलिए वे भागकर मुसलमान और ईसाई हो जाती थीं। आर्यसमाज ने ऐसी बाल-विधवाओं के लिए पुनर्विवाह की रीति चलाई। अब प्रतिवर्ष सहस्रों विधवाओं का विवाह होता है और कोई बुरा नहीं मानता।

हिन्दू लोग एक दूसरे के हाथ का लेकर नहीं खाते थे। "आठ पूर्विए और नौ चूल्हे" की बात थी। कच्ची-पक्की रोटी और छूत-छात का बखेड़ा बहुत अधिक था। इसी से हिन्दुओं में एकता न थी। आर्यसमाज ने इस बखेड़े को उड़ाकर आर्यों में एक दूसरे के हाथ का खाने का प्रचार किया।

पहले कोई राम, राम, कोई सीताराम, कोई राधेश्याम कहकर एक दूसरे का अभिवादन करते थे। आर्यसमाज ने ये सब भेद-भाव हटाकर एक "नमस्ते" का प्रचार किया। आर्य-समाज में अब कोई "पण्डितजी पालागन" और "ठाकुरजी जयदेव" नहीं करता। यहाँ सब ब्राह्मण, खत्री, ठाकुर और चमार-भंगी एक ही सूत्र में पिरोये हुए एक दूसरे को प्रेमपूर्वक "नमस्ते" कहते हैं। आर्यसमाज मृतकों को श्राद्ध खिलाने के स्थान में जीते माता-पिता और बड़े बूढ़ों की सेवा का उपदेश करता है।

अपने आपको ऊँची जाति के समझनेवाले हिन्दुओं ने सात करोड़ दूसरे हिन्दुओं को अछूत बना रक्खा था। वे चाहे

कितने ही उत्तम काम करनेवाले, साफ़-सुथरे और परमात्मा के भक्त क्यों न हों, ये जन्माभिमानी लोग उनसे बहुत बुरा व्यवहार करते थे। उनसे छू जाने पर नहाते थे। पाखाना खानेवाला कुत्ता इनके चौके में आ सकता था, परन्तु एक डोम या चमार नहीं आ सकता था। इन लोगों को हिन्दुओं के कुँवों से पानी भरने की भी आज्ञा न थी। हाँ, जब यही लोग ईसाई या मुसलमान हो जाते थे तो बड़े से बड़ा हिन्दू भी उनके साथ हाथ मिलाने में अभिमान समझता था। फिर कोई भी उनको कुँवें से पानी भरने से न रोक सकता था। यह सब जन्म की ऊँच-नीच और छूत-छात वेद की शिक्षा के विरुद्ध है। इसलिए आर्यसमाज ने इन लोगों को गले लगाया और इनकी छूत को दूर किया। अब ये नाममात्र ऊँची जाति के आर्यसमाजियों के साथ भाई भाई की तरह मिलते हैं। उनके हाथ का बना हुआ सभी आर्य खा लेते हैं। इसलिए ये लोग अब मुसलमान और ईसाई भी नहीं होते।

आर्यसमाज जन्म से जात-पाँत नहीं मानता। उसकी दृष्टि में आज-कल जो अपढ़ लोग रोटी पकाने और बर्तन साफ़ करने का काम करते हैं वे ब्राह्मण नहीं हैं। जो दूकानदारी करते हैं वे क्षत्रिय नहीं हैं। परन्तु इन लोगों में झूठा जन्म का अभिमान मौजूद है। इससे ये सहस्रों छोटी

छोटी बिरादरियों के तंग पिंजरों में बंद पड़े हैं। आर्य-समाज इन बिरादरियों के पिंजरों को तोड़ कर, जन्म से जात-पाँत का कुछ भी विचार न करके, गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार लड़के और लड़की का विवाह करने पर ज़ोर देता है। और इसके प्रयत्न से सैकड़ों ऐसे विवाह हो भी चुके हैं जिनमें वर और वधू भिन्न भिन्न ज़ातों के थे। लाहौर में जात-पाँत-तोड़क मंडल नाम की एक संस्था क़ायम है। वह जन्म की जात-पाँत का झूठा और हानिकारक भाव दूर करके सभी हिन्दुओं में रोटी-बेटी का संबंध पैदा करने का प्रचार करती है।

शुद्धि

आर्यसमाज से पहले किसी भी मुसलमान या ईसाई को आर्य (हिन्दू) बनने की आज्ञा न थी। चाहे वह वेदों को मानने-वाला और उनके अनुसार आचरण करनेवाला ही क्यों न हो। वरन् जो हिन्दू अपने धर्म्म से पतित होकर किसी कारण से मुसलमान हो जाता था उसे भी वापस हिन्दू-धर्म्म में नहीं लिया जाता था। आर्यसमाज ने वैदिक धर्म का द्वार सबके लिए खोल दिया। अब सहस्रों मुसलमान और ईसाई वैदिक धर्म्म की शरण में आ चुके हैं। वे अब वैसे ही आर्य हैं जैसे कि और जन्म के हिन्दू हैं। कई सैयद और पठान भी वैदिक धर्म्म

को ग्रहण कर चुके हैं। हाल में मिस मिलर नाम की एक अमरीकन युवती शुद्ध होकर शर्मिष्ठा देवी बनी है। कई मुसलमान स्त्रियाँ शुद्ध होकर हिन्दुओं के साथ विवाह कर चुकी हैं। सारांश यह कि आर्यसमाज ने वैदिक धर्म्म को, जिसे हिन्दू लोग कच्चा धागा समझे बैठे थे, एक लोहे का रस्सा बना दिया है, जो आसानी से नहीं टूट सकता।

अनाथों और अकाल तथा बाढ़ से पीड़ित लोगों के लिए भी आर्यसमाज बहुत कुछ करता है। अनाथ बच्चों के पालन-पोषण के लिए उसने अनेक अनाथालय खोल रखे हैं। जब भूचाल आता है, अकाल पड़ता है या जल की बाढ़ से लोगों पर विपत्ति आती है तो आर्यसमाज सदा उनकी सहायता को पहुँचता है। काँगड़ा, गढ़वाल, उड़ीसा, मलाबार आदि में आर्यसमाज ने लोगों की बहुत सहायता की थी। पहले अनाथ और अकाल-पीड़ित लोग मुसलमान या ईसाई हो जाते थे। परन्तु अब आर्यसमाज उनकी रक्षा करता है। आर्यसमाज हिन्दुओं के लिए एक ढाल के समान है। आर्यसमाज को परोपकार के ये सब गुण अपने पूज्य प्रवर्तक ऋषि दयानन्दजी से मिले हैं